(भा० टी०) जिसकी मैं निरन्तर चिन्ता करता हूं सो मुझसे विरक्त होकर दूसरे जन की इच्छा करती है वह और जन अन्य स्त्री पर आसक्त है और वह अन्य स्त्री इस से प्रसन्न है इस लिये मेरी प्रिया को धिक्कार है जो दूसरे जन को चाहती है और दूसरे जन को जो अन्य स्त्री को चाहता है और इस अन्य स्त्री को जो फिर मुझ से प्रसन्न है और मुझे जो इस से फंस हूं और कामदेव को भी धिक्कार है कि जिसकी यह प्रेरणा है ॥ २ ॥

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रंजयति ॥३॥

(भा० टी०) अज्ञानी को सुख से सुधार सकते हैं और ज्ञानी को अति सुख से, परन्तु अल्पज्ञ नर को ब्रह्मा भी नहीं सुधार सकते हैं ॥ ३ ॥

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् ।
समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ॥
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत् ।
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

(भा० टी०) मनुष्य [illegible] मगर के मुख से [illegible]
[illegible] निकाल सकता है

और चञ्चल तरङ्ग भरे हुए समुद्र को तैर कर पार हो सक्ता है और क्रोधित सर्प को फूल की नांई मनुष्य सिर पर धार सक्ता है परन्तु मूर्ख का चित्त जो असत वस्तु में धंसा हुआ है उसे कोई नहीं फिरा सक्ता है ॥ ४ ॥

लभेत् सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन् ।
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ॥
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत् ।
नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजन चित्तमाराधयेत् ॥५॥

(भा० टी०) यदि यत्न से पेरे तो बालू में तेल पावे और मृग तृष्णा में प्यासा कदाचित जल भी पिये और ढूंढने से खर का सींग भी मिल सके परन्तु मूर्ख का चित्त जो असत वस्तु में धंसा है उसे कोई नहीं अलग कर सक्ता है ॥ ५ ॥

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते ।
भेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुम प्रान्तेन सन्नह्यते ॥
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते ॥
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ६

(भा० टी०) यह मनुष्य कोमल कमल की डंटी के सूत से हाथी को बांधा चाहता है और शिरस के

नीचे ही नीचे गिरती गई और स्वच्छ भी होती तैसे ही विवेक भ्रष्ट लोग भी सर्वदा सौ सौ प्रकार गिरते ही जाते हैं ॥ १० ॥

शक्योवारयितुं जलेन हुतभुक्छत्रेण सूर्यातपो नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ॥ व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्र प्रयोगैर्विषम् । सर्वस्यौषधमस्तिशास्त्रविहितंमूर्खस्य नास्त्यौषधं॥११॥

(भा० टी०) जल से अग्नि का निवारण हो सक्ता है छाता से धूप का चौखे अंकुश से उन्मत्त हाथी का दण्ड से दुष्ट बैल और गदहे को नाना प्रकार की ओषधियों से व्याधि को और मंत्र प्रयोग से विष का योग शास्त्र की विधि से सब की औषधि है परन्तु मुर्ख की ओषधी नहीं हो सकती ॥ ११ ॥

साहित्य संगीत कला विहीनः ।
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ॥
तृणं न खादन्नपि जीवमानः ।
स्त [illegible]
(भा० [illegible] ॥ १२ ॥

जीता है यह उन पशुओं का परम भाग्य है ॥ १२ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानम्।
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ॥
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः।
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

(भा० टी०) जिन को विद्या तप ज्ञान शील गुण और धर्म नहीं वे मृत्यु लोक में पृथ्वी पर भार रूप साक्षात् पशु हैं मनुष्य का रूप धर कर विचरते हैं।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रांतं वनचरैः सह।
नमूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्र भवनेष्वपि ॥

(भा० टी०) पर्वत और वन में वनचरों के संग भ्रमण करना अच्छा है परन्तु मूर्ख जनका संसर्ग इन्द्र भवन में भी बुरा है। ॥ १४ ॥

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा।
विख्याताः कवयो वसंति विषये यस्यप्रभोर्निर्धनाः ॥
तज्जाड्यंवसुधाधिपस्य कवयोह्यर्थविनापीश्वराः।
कुत्साःस्युः कुपरीक्षकादिमणयो यैरर्घतः पातिताः ॥

(भा० टी०) शास्त्रोक्त शब्दों से जिन की वाणी सुन्दर है और शिष्य के पढ़ाने योग्य जिन की विद्या है और वे आप भी प्रसिद्ध हैं ऐसे कवि जिस राजा के

देश में निर्धन रहते हैं उस में जड़ता राजा ही की है और कविलोग तो विना द्रव्यके भी श्रेष्ट ही हैं जिन्हों ने मणियों का मोल घटाया वे परीक्षा करने वाले ही खोटे हैं ॥ १५ ॥

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा ।
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं परां ।
कल्पांतेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमंतर्धनम्
येषांतान्प्रति मानमुज्झतनृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ।

(भा० टी०) चुराने वालेको नहीं देख पड़ता औ सदा सुख की वृद्धि करता है और निरन्तर मांगने वालों को दिया जाय तो परम वृद्धि को प्राप्त होता है और कल्पांत में भी जिसका नाश नहीं ऐसा विद्या रूपी अन्तर धन जिन के पास है तिनसे हे राजा लोगो अभिमान छोड दो क्योंकि उनके समान जगत में दूसरा कौन है ॥ १६ ॥

अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मावमंस्था ।
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि ॥
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानाम् ।
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥

(भा० टी०) जिनको परमार्थ अर्थात् मोक्ष

के साधन प्राप्त हैं ऐसे पण्डितों का अपमान मत करो क्योंकि उनको तृण के समान तुम्हारी लक्ष्मी न रोक सकेगी जैसे नवीन मद की धारा शोभित श्याम मस्तक वाले हाथी को कमल की डंडी का सूत नहीं रोक सकता ॥ १७ ॥

अम्भोजिनी वननिवास विलासमेव ।
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ॥
नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धाम् ।
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौसमर्थः ॥

(भा० टी०) हंस पर यदि विधाता कोप करे तो उसका कमल वनमें निवास और वहां का विलास नष्ट कर सक्ता है परन्तु उसके दूध और जल बिल्गाने का प्रसिद्ध पाण्डित्य (चतुराई) की कीर्ति को विधाता भी नहीं नाश कर सक्ता ॥ १८ ॥

केयूरा न विभूषयंति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला ।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजाः ॥
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते ।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ १९ ॥

(भा० टी०) बाजूबन्द कंकण और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मोतियों के हार स्नान चन्दन लेपन

फूलों का शृंगार और सुथरे हुए केशादि पुरुषों को भूषित नहीं कर सक्ते केवल वह वाणी जो संस्कार युक्त धारण की गई हो पुरुषों को भूषित कर सक्ते हैं और सब भूषण अवश्य क्षय हो जाते हैं परन्तु केवल वाणी ही का भूषण २ की जगह रहजाते हैं ॥ १९ ॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकंप्रच्छन्नगुप्तं
विद्याभोगकरी यशःसु...

(भा० टी०) यदि क्षमा है तो कवच का क्या काम है और जिस मनुष्य में क्रोध है तो उसे शत्रु की क्या आवश्यकता है यदि जाति है तो उसे अग्नि का क्या प्रयोजन है और जो अपने इष्टमित्र समीप हैं तो दिव्य औषधियों से क्या फल है जिन के दुर्जन विद्यमान हैं उसका सर्प और अधिक क्या करेंगे और जिसके निर्दोष विद्या है तो उसे धन द्रव्य से क्या होगा और जिसे लज्जा है तो उसे फिर और भूषण क्या है और जिस को सुन्दर कविता है उसके आगे राज्य क्या है ॥२१॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने।
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ॥
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता।
येचैवं पुरुषाःकलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥

(भा० टी०) अपने कुटुंब के विषे उदारता परजन पर दया दुर्जन से सदा शठता साधु से प्रीति राजसभा में नीति पण्डितों से नम्रताई शत्रुजनोंमें सूरता बड़े लोगों में क्षमा और स्त्रियों में धूर्तता जो पुरुष इस भांति इन सब कलाओं में निपुण हैं तिन्हीं में लोकाचार की स्थिति है अर्थात् लोकमें वही अच्छे होते हैं ॥ २२॥

जाड्यंधियोहरतिसिंचति वाचि सत्यम्।

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम् ।
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

(भा० टी०) बुद्धि की जडता को हरती वाणी मे
सत्यको सींचती मानको बढाती पाप को दूर करत
चित्तको प्रसन्न रखती ओर दिशाओं में कीर्ति को
विस्तृत (फैलाती) करती है देखोतो यह सतसंगति पुरु
को क्या नहीं करती है ॥ २३ ॥

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजंभयम् ॥

(भा० टी०) ऐसे पुण्यवान् रससिद्ध कवीश्वर जिन्हे
जो रस सिद्ध है उन के यशरूपी काया में जरा मरण
का भय नहीं होता ॥ २४ ॥

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निःक्लेशलेशंमनः ।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखम्
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिना ।

(भा० टी०) सदाचरण वाला पुत्र, पतिव्रता स्त्री
सर्वदा अनुग्रह करने वाला स्वामी प्रेमी मित्र कुटुम्ब
लोग अरु क्लेश के लेशसे रहित सुन्दर, स्थि

स्थिर सम्पति और विद्या से शोभायमान मुख यह सब उस मनुष्य को प्राप्त होतेहैं जिसपर जगतपिता मनोरथ के दाता हरिभगवान प्रसन्न हों ॥ २४ ॥

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणेसंयमः सत्यवाक्यं ।
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावःपरेषाम्॥
तृष्णास्रोतोविभङ्गोगुरुषुचविनयः सर्वभूतानुकम्पा ।
सामान्यःसर्व शास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेषपंथाः॥

(भा० टी० जीवहिंसा से निवृत्ति रहना पराए धन हरण करनेसे संयमन करना सत्य बोलना समय पर यथा शक्ति दान देना परस्त्रियों की कथा में मौन रहना तृष्णा के प्रवाह को तोडना बडे लोगों में नम्र रहना प्राणी मात्र पर दया रखना सब शास्त्रों में प्रवृत्ति रखना और नित्यनैमित्तिक कर्मों को न छोडना यह सब मनुष्यों के कल्याण का पंथ है ॥ २६ ॥

आरभ्यते न खलुविघ्नभयेननीचैः ।
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ॥
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः ।
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

(भा० टी०) विघ्न के भय से नीचजन कार्य का आरंभही नहीं करते और मध्यम जन आरंभ कर विघ्नो

देखकार्य को छोड बैठते हैं और उत्तमजन बारंबार विघ्न होनेसे भी कार्य का आरंभ करके परित्याग नहीं करते अर्थात् उस कार्य को पूराही करके छोडते हैं ॥ २७ ॥

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेप्यसुकरम् ।
त्वसंतो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः ॥
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महताम् ॥
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥

(भा० टी०) सत्पुरुष लोग असंतोष से कुछ याचना नहीं करते और स्वल्पधनवाले सज्जन से भी नहीं मांगते न्यायोक्त अपनी जीविका उन्हें प्रिय है प्राणजाने परभी मलिन कर्म उनसे दुष्कर है विपत्ति में ऊंच पने रहते हैं और श्रेष्ठ लोगों के आचरण को धारण किए रहते हैं यह तरवार की धार से कठोरव्रत को उन्हें किसने उपदेश किया मानो ब्रह्माने उपदेश किया है ॥ २८॥

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टांदशा ।
आपन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ॥
मत्तेभेन्द्र विभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः ।
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥

(भा० टी०) [illegible] दुर्बल [illegible] से शिथिल [illegible] होके [illegible] दशा को [illegible] तेजहीन होता [illegible]

देना पृथ्वी पर लोट के पेट और मुंह दिखलाना इत्यादि दीनता कुत्ता टुकडा देने वाले के आगे करता है और गजराज अपने आहार देनेवाले की ओर एक बेर गंभीरता से देखकर अनेक भांति की चतुराई से भोजन करता है ॥ ३१ ॥

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

भा० टीका—वही पुरुष जगत में जनमा जिनके जन्मे से वंशकी उन्नति हो नहीं तो इस चक्र के नाईं घूमते भए संसार में मरके कौन नहीं जन्म पाता है ॥ ३२ ॥

कुसुमस्तबकस्येव द्वे गती स्तो मनस्विनाम् ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्यन्ते वनेऽथवा ॥

भा० टी०—फूल के गुच्छे की नाईं श्रेष्ठजनों की रीति दो प्रकार की है या तो सब लोगों के मस्तकही पर शोभित होंगे अथवा वनही में सूख (मुर्झा) होके समान हो जावेंगे ॥ ३३ ॥

सन्त्यन्येपि बृहस्पतिप्रभृतयःसंभाविताः पञ्चषा ।
तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ॥
द्वावेव ग्रसते दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ ।
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषीकृतः ॥

भा० टी०—बृहस्पति आदि और भी पांच सात ग्रह आकाश में श्रेष्ठ है पर विशेष पराक्रम की इच्छा करनेवाला राहु तिनके प्रति वैर नहीं करता है। हे भाइयो देखो कि अमावस और पूर्णिमा को दानवपति राहु जो केवल मस्तक ही मात्र रहगया है तिसपर भी दोनों दिनेश्वर शोभाकर सूर्य्य और चन्द्रमा पूर्ण तेजः राशों को जाकर ग्रसता है ॥ ३४ ॥

वहति भुवन श्रेणीं शेषः फणाफणकस्थिताम्।
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स विधार्यते॥
तमपि कुरुते क्रोडा धीनं पयोधिरनादरा।
दहमहतांनिःसीमानश्चरित्रविभूतयः॥

भा० टी०—चौदह भुवनकी पंक्ति को शेषजी अपने फन पर धारण किये हैं कच्छपजी अपनी पीठ के मध्य में तिन शेषजी को भी धरे हैं, और उन कच्छपको भी समुद्रने अनादर से शूकर के आधीन करदिया है इससे यह सिद्ध हुआ कि महज्जनों के चरित्र की शोभा की सीमा नहीं है ॥ ३५ ॥

वरं पक्षच्छेदःसमदमघवन्मुक्तकुलिश।
प्रहारैरुद्गच्छद्दहल दहनोद्गार गुरुभिः॥
तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे।

नचासीसंपातः पयसि पयसांपत्युरु

(भा० टी०) मद में भरे हुए इन्द्र के व
की चोट को जिसकी अग्नि की ज्वाला छ
इससे मरजाना अच्छा रहा परन्तु अपने पि
को क्लेश के विवश छोड उसके पुत्र मैनाक
था कि जलराज समुद्र में भागकर छूट के
चावै ॥ २६ ॥

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरि
तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते ॥

(भा० टी०) यदि कान्तमणि यद्यपि अचेत
तो सूर्य के किरण रूपी पादस्पर्श करने से
जलता है ऐसे ही तेजस्वी पुरुष पराकृत अना
सह सकै ॥ ३० ॥

सिंहः शिशुरपि निपतति मदम [illegible]
[illegible]

(भा० टी०) [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छताच्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनःसन्दह्यतां वह्निना ॥
शौर्ये वैरिणिवज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं।
येनैकेनविनागुणास्तृणलवप्रायाःसमस्ताइमे ॥

(भा॰ टीका॰) जाति रसातल में जाय और सर्व गुण उससे भी अधिक नीचे जाय और शील पर्वत से गिर के नाश होजाय और कुटुम्ब के लोग अग्नि में जांय और सूरतारूपी शत्रु पर बज्र पड़े परन्तु हमको केवल द्रव्य ही से काम है कि जिसके बिन सर्व गुण तृणके समान हैं ॥ ३९ ॥ इति मान शौर्य प्रशंसा ॥

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म ।
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ॥
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुष स एव त्वन्यः ।
क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

(भा॰ टी॰) सब इन्द्रियां वही हैं और व्यौहारभी सब वही है और प्रबल बुद्धि भी है और वचन भी वैसे ही हैं परन्तु एक द्रव्य की उष्णता बिना वही पुरुष क्षण मात्र में और का और होजाता है, यह विचित्र गति है ॥ ४० ॥

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः ।
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ॥

स एव वक्ता स च दर्शनीयः ।
सर्वे गुणाःकाञ्चनमाश्रयन्ति ॥

(भाषा टीका) जिसके पास द्रव्य है वही नर कुलीन, पण्डित, गुणज्ञ, वक्ता और दर्शन योग्य है इससे यह सिद्ध हुआ कि सब गुण सुवर्ण के आश्रय रहते हैं ॥ ४१ ॥

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतोलालनाद्
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ॥
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहःप्रवासाश्रया- ।
न्मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥

(भा० टी०) बुरे मन्त्रियों के मन्त्र से राजा, [illegible] [illegible], [illegible] से पुत्र, न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, खल की उपासना से शील, मद्यपान से लज्जा, बिना देखे खेती, परदेश में रहने से स्नेह, प्रणय न होने से मैत्री, अनीति से ऋद्धि, और प्रमाद [illegible] से धन, नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

(भा० टी०) धन की तीन गति होती हैं दान भोग और नाश [illegible] जो न देता है, भोगता नहीं है। और जो धनके

भोगमें न लाया उसके धनकी नाशरूप तीसरी गति होती है ॥ ४३ ॥

मणिः शाणोलीढः समरविजयी हेति निहतो ।
मदक्षीणो नागःशरदि सरितः श्यानपुलिनाः ॥
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालललना ।
तनिम्ना शोभंते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः ॥

(भा० टी०) सानसे खरादी हुई मणि, संग्राम के जीतनेवाला खड्गसे हत, मदसे उतरा कृश हाथी, शरद ऋतुकी स्वल्पनदी, दूजका चंद्रमा सुरति की मली हुई बाला स्त्री, और अति दान देनेसे दरिद्री, इत्यादि तव.ी दुर्बलताही की शोभा है ॥ ४४ ॥

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये ।
स पश्चात्संपूर्णे कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ॥
अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयार्थेषुधनिना–
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च ॥

(भा० टी०) जब कोई परिक्षीण अर्थात् निर्धन अवस्थामें होता है तब एक पसा जवकी इच्छा करता है और वही मनुष्य जब सम्पूर्ण संपन्न अर्थात् धनिक अवस्था में होजाता है तब पृथ्वीको तृण समान गिनता है इस कारण यही दोनों चंचल अवस्था पुरुषको गुरु और लघु बनाती है और वस्तुओंको भी फैलाती और सकोड़ती हैं ॥ ४५ ॥

राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां ।
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ॥
तस्मिश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे ।
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥

भा० टीका—हे राजा ! जो पृथ्वीरूपी धेनुको
चाहते हो तो बछड़ेके समान प्रजालोकोंका पोषण
जब यह प्रजारूपी बछडा अच्छी भांति से नि
पोषा जायगा तब कल्पलता के तुल्य पृथ्वी
प्रकार के फल देगी ॥ ४६ ॥

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च ।
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ॥
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च ।
वेश्याङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥

भा० टी०-कहीं सत्य कहीं असत्यवादिनी
कठोर कहीं प्रियभाषिणी कहीं हिंसा करनेवाली
दयालु कहीं लोभी कहीं उदार कहीं नित्यप्रति बहुत
द्रव्य उठानेवाली और कहीं बहुत ही संचय करनेवा
यह राजनीति वेश्याकी नांई अनेक रूपसे रहतीहैं।

विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां ।
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ॥

येषाम्नैते षड्गुणा न प्रवृत्ताः ।
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ ४८ ॥

(भा० टी०) विद्या, कीर्ति ब्राह्मणोंका पालन,दान भोग और मित्रोंकी रक्षा, जिनमें ये गुण सम्पादन न हुए तिन्हें राजाकी सेवाका क्या फल है ॥

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं ।
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेपि नितरां मेरौततो नाधिकम् ॥
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा माकृथाः ।
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥

भा० टी०—विधाताने जो अपने ललाट में लिख दिया है किंचित् धन अथवा बहुत चाहे मारवाडकी भूमि में भी जाय बैठे उसे वह निरन्तर प्राप्त होगा उससे. अधिक सुमेरुपरभी जानेसे न मिलेगा इसलिये, धैर्य, धरो और धनवालों के निकट वृथा याचना न करो, क्योंकि देखो कूप और समुद्रमें घडा समानही जल ग्रहण करता है ॥ ४९ ॥

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते ॥

भा० टी०-तुमभी मुझ पपीहाके आधार हो हे श्रेष्ठ मेघ यह बात किसपर नहीं प्रसिद्ध है अब तुम हमारी

जेनः परिहर्तव्यो विद्ययाभूषितोऽपि सन् ।
मणिनालङ्कृतः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥

(भा० टीका—) दुर्जन यद्यपि विद्यावान भी हो तो परित्यागही के योग्य होता है जैसे मणिसे भूषित क्या भयंकर नहीं होता ॥

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं ।
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि ॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे ।
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥

(भाषा टीका) लज्जावान पुरुषको शिथिल, व्रतधारी को दम्भी, पवित्रको कपटी, शूरको निर्दयी, सापे मूर्ख, प्रिय कहने वालेको दीन, तेजस्वी को गर्वीला, वक्ताको बकवादी, और स्थिर चित्तवालेको आलसी कहते हैं इससे यह जान पड़ता है कि गुणियों में कौन सा गुण है कि जिसे दुर्जनोंने कलंक नहीं लगाया ५४

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः ।
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥

(भा०टीका०) लोभ जिसमें है फिर उसके और अव-

मित्र नहीं जैसे होम करनेवालेको भी अग्नि छूजाय तो जलाही देता है ॥ ५७ ॥

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा ।
धृष्टः पार्श्वे वसति न तदा दूरतश्चाप्रगल्भः ॥
क्षान्त्या भीरुर्यदिनसहते प्रायशो नाभिजातः ।
सेवाधर्मःपरमगहनोयोगिनामप्यगम्यः ॥

(भा० टी०) मौन रहनेसे गूंगा, वक्ता होनेसे वातुल और बकवादी, समीप होने से ढीठ, दूर रहने से मूर्ख, क्षमा करने से कादर, और न सहने से कुलहीन. कहलाता है. तात्पर्य यह है कि सेवा धर्म परम कठिन है योगियों को भी अगम्य है ॥ ५८ ॥

उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य ।
प्राग्जातविस्तृतनिजाधर्मकर्मवृत्तेः ॥
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोस्य ॥
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यतेकैः ॥ ५६

भा० टी०—अनेक खलों को प्रकाश करने वाला निरंकुश कि जिसके पूर्वजन्मके मंद अधम कर्म उदय हो रहेहैं और दैवकरके धनभी उसे प्राप्त है और गुणोंसे द्वेष करनेवाला ऐसे नीचके वश रहकर कितने सुख पाया है ॥ ५९ ॥

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण ।
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ॥
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना ।
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥

भा० टी०—आरंभमें बहुत लम्बी चौडी फिर क्र पूर्वार्द्ध दोपहरकी छाया के समान खलों की मैत्री क्ष क्षण घटती जाती है और सज्जनोंकी मैत्री पहि बहुत किंचित फिर क्रमही कम परार्द्ध दोपहरकी छाय नाई प्रतिक्षण बढती जाती है ॥ ६० ॥

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥

भा० टीका—हरिण, मछली, और सज्जन तृण,ज और संतोष करके अपनी जीविका करते हैं पर व्या धीवर और कुटिललोग विना प्रयोजनही इनसे संसार वैर रखते हैं ॥ ६१ ॥

इति दुर्जन प्रशंसा । अथ सुजननिं[illegible] ।

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषितिरतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिःशूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले- ।
ष्वेते येषु वसंति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥

(भा० टी०)-सज्जनोंकी सत्संगकी वांछा, परगु[illegible]णों में प्रीति, बड़े लोगों में नम्रता, विद्या में व्यसन, [illegible] स्त्री में रति, लोक निन्दा से भय, शंकर में भक्ति, आत्मा के दमन की शक्ति और खल के संसर्ग से [illegible] ये निर्मल गुण जिन पुरुषों में है तिन्हें हम नमस्कार करते हैं ॥ ६४ ॥

[illegible]विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा।
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः॥
[illegible]यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ।
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

(भा० टी०) विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में क्षमा, [illegible] सभा में चतुराई, संग्राम में पराक्रम, [illegible] और शास्त्र में व्यसन ये बातें [illegible] स्वाभाविक सिद्ध होती हैं ॥ ६६ ॥

[illegible]

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

(भा० टी० [illegible]

[illegible]

दूसरे के किये हुए उपकारको सभा में वर्णन कर
धन पाकर गर्व न करना, और पराई चर्चा में उ
निरादर की बात बचाकर कहना, यह तरवारकी धार
समान कठिन व्रत सत्पुरुषों को किसने उपदे
किया है ॥ ६४ ॥

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता ।
मुखे सत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं ।
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मंडनमिदम् ॥

(भा० टी०) हाथ दानसे, मस्तक बड़े लोगोंके
पडनेसे, मुख सत्य बोलनेसे, दोनों भुजा अतुल पराक्र
से हृदय स्वच्छ वृत्तिसे, कान शास्त्र श्रवणसे, बड़ाई
योग्य होते हैं, और यही सत्पुरुषों के बिना ऐश्वर्य
भी भूषण है ॥ ६५ ॥

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ॥

भा० टी०—संपत्ति में महात्मा लोगोंका चित्त कम
उसे भी कोमल रहता है और आपत्ति में पर्वत की पा
शिला के तुल्य कठिन हो जाता है ॥ ६६ ॥

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते ।

मुक्ताकारतया तदेव नलिनी पत्रस्थितं राजते॥
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते।
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम्॥

(भा० टीका) तप्त लोहेपर जलकी बूंद पडनेसे उस का नामभी नहीं रहता वही बूंद कमलके पत्रपर पडनेसे मोतीके सदृश शोभित होता है फिर वही बूंद स्वाति नक्षत्रमें समुद्रकी सीपमें पडनेसे साक्षात् मोती होजाता है इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रायः अधम मध्यम और उत्तम गुण संसर्ग (संग) ही से होता है ॥ ६७ ॥

यःप्रीणयेत्सुचरितैःपितरं सपुत्रो।
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्॥
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-।
देतत्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते॥

(भाषा टी०) जो अपने चारित्रोंसे अपने पिताको प्रसन्न रक्खे ऐसा पुत्र, जो अपने पति का निरंतर हित चाहै ऐसी स्त्री, और जो आपत्ति और सुख दोनों में समान भाव रक्खे ऐसा मित्र, जगत में यह तीनों पुण्यवानही को मिलते हैं ॥ ६८ ॥

एको देवः केशवो वा शिवो वा।
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा॥

एको वासः पत्तने वा वने वा ।
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥

(भा० टी०) एक देवको ग्रहण किया चाहिये केशव हो वा शिव,एक मित्र किया चाहिये राजाहो वा तपस्वी, एक जगह वसा चाहिये नगर हो वा वन, और एक सुन्दरी स्त्रीसे प्रीति हो वा कंदरा (गुहा) से ॥६९

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुण कथनैः स्वान् गुणान् ।
ख्यापयन्तः स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततपृथु-
तरारम्भयत्नाःपरार्थे ॥ क्षान्त्यैवाक्षेप रूक्षाक्षरमु-
खरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः सन्तः साश्चर्य
चर्या जगति वहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ॥

(भा० टी०) नम्रतासे ऊंचे होते और परगुण कथन करनेसे अपना गुण प्रसिद्ध करते हैं और निरंतर विस्तारपूर्वक परकार्य करने से अपना कार्य सम्पादन करते हैं और निन्दक दुष्टोंको अपनी क्षमाही से दूषित करदेते हैं ऐसे आश्चर्य आचरणवाले वहुमाननीय संत लोग जगतमें किसके पूजनीय नहीं हैं ॥ ७० ॥

इति सुजनप्रशंसा ।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै ।
र्नवाम्बुभिर्भूरि विलम्बिनो धनाः ॥

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः।
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ७१ ॥

(भा॰ टीका) जैसे फल होने से वृक्ष नम्र होते हैं, जैसे नवीन जल भरने से मेघ भूमि पर झुक जाते हैं वैसे ही सत्पुरुष भी सम्पत्ति पाके उद्धत नहीं होते किंतु नम्र होते हैं अर्थात् परोपकारी जीवों का यही स्वभाव ही है ॥ ७१ ॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन।
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ॥
विभाति कायः करुणापराणां।
परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥ ७२ ॥

(भाषा टी॰) कानकी शोभा शास्त्र श्रवण से है कुण्डल पहिरने से नहीं, हाथकी शोभा दान करने से है कंकण पहिरने से नहीं, करुणामय जनों के देहकी शोभा परोपकार करने से है कुछ चन्दन लगाने से नहीं ॥ ७२ ॥

पापान्निवारयति योजयते हिताय।
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटी करोति ॥
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले।
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ७३ ॥

(भा० टीका) मित्र को पाप करने से व
और उसके हितकी बात उसे उपदेश करै,
बातको छिपावे, गुणों को प्रगट करै, आपदि
साथ न छोड़ै और समय पड़े पर यथा शक्ति
दे यह अच्छे मित्रों का लक्षण सन्तोंने कहा है

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति ।
चन्द्रो विकाशयति कैरवचक्रवालम् ॥
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति ।
सन्तः स्वयं परहिते सुकृताभियोगाः ॥

(भा० टी०) सूर्य बिना याचे स्वतः कम
समूह को विकसित करता है, चन्द्रमा बिना
कुमुद के समूह को प्रफुल्लित करता है और
बिना याचना किये वृष्टिमें जल देता है ऐसे ही
जन बिना याचेही पराये हित के हेतु आपसे
उद्योग करते हैं ॥ ७४ ॥

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥७५

(भा० टी०) सत्पुरुष वे हैं जो ...

सरे के कार्य को साधते हैं, सामान्य पुरुष वे हैं जो अपने और पराये दोनों कार्यको साधन करते हैं, और मनुष्यों में राक्षस वे पुरुष हैं जो अपने हितके अर्थ पराये कामको नष्ट करते हैं, और जो व्यर्थ दूसरे के कार्य की हानि करते हैं वे कैसे पुरुष हैं उन्हें हम नहीं जानते ॥ ७५ ॥

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः ।
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं ।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ ७६

(भा० टी०)–दूध में जब जल मिला तो उस दूध ने अपना सब गुण और रूप अपने जल रूपी मित्रको दे दिया औ फिर दूधमें ताप देखकर जलने अपना शरीर अग्नि में होम दिया अर्थात् जल गया फिर दूधने भी मित्रकी इस आपत्ति को देखकर अग्नि में गिरना चाहा फिर जलके छींटे पाके अपने मित्रको आया जान ठंडा हो बैठ गया सो उचित ही है क्यों कि सत्पुरुषों की मैत्री ऐसीही होती है ॥ ७६ ॥

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा ।
मितश्च शरणार्थिनः शिखरिणां गणाः शेरते ॥

इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै ।
रहो विततमूर्जितम् भरसहं च सिन्धोर्वपुः ७७

(भा० टी०) समुद्रमें एक ओर शेषशायी विष्णु भगवान सोते हैं एक ओर विष्णु के शत्रु राक्षसन का कुल रहता है, एक ओर शरणार्थी पर्वतों के समूह पड़े हैं और एक ओर वडवानल प्रलयकी अग्नि सहित जलको औंटाय रहाहै परन्तु इन सबोंसे वह कुछ नहीं घबराता है इससे यह जान पड़ा कि समुद्र का शरीर बड़ा विशाल बलवान् और भार सहने वाला है सारांश यह कि सत्पुरुष भी समुद्रवत होते हैं ॥ ७७ ॥

तृष्णां छिन्धि भजक्षमां जहि मदं पापेरतिंमा कृथाः ।
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ॥
मान्यान्मानय विद्विषोप्यनुनयप्रख्यापय स्वान्गुणां ।
कीर्तिं पालयदुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ७८

भा० टी०—तृष्णा का छेदन, क्षमा का सेवन, मद का त्याग, पाप संग प्रीति मत करो, सत्य बोलो, साधुजनों की मर्यादा (मार्ग) को प्राप्त हो, विद्वज्जनों का सेवन करो, माननजनों को मानों, शत्रुओं को भी प्रसन्न रक्खो, अपने गुणों को प्रसिद्ध करो, अपनी कीर्ति का पालन करो और दुःखियों पर दया

रक्खो यही सत्पुरुषों के लक्षण हैं ॥ ७८ ॥

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा ।
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ॥
परगुण परमाणून्पर्वती कृत्यनित्यम् ।
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियंतः७९

भा० टी०—मन वाणी और शरीर में पुण्यरूपी अमृत से भरे हुये त्रिभुवनको उपकारों से तृप्त करने वाले और परमाणु सरीसे अल्प पराये गुणों को पर्वत सा बढाके अपने हृदय में प्रसन्न होने वाले कोई विरले ही सन्त हैं ॥ ७९ ॥

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा ।
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥
मन्यामहे मलयमेव यदा श्रयेण ।
कङ्कोलनिंबकुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥८०॥

(भा० टी०) उस सोने के सुमेरु पर्वतसे हमको क्या और चांदी के कैलाश से भी क्या कि जिसके आश्रित वृक्ष सदा जैसे के तैसेही बने रहें, हमतो मलयाचलको श्रेष्ठ मानते हैं कि जहां ककोल नीम और कुटजादि कडुवे वृक्ष भी सब चन्दन हो जाते हैं ॥ ८० ॥

अथ धैर्य प्रशंसा।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न
भेजिरे भीम विषेण भीतिम् ॥
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥ ८१ ॥

भा० टीका—अनमोल रत्न पाकर देवताओं ने [illegible] समुद्र का मथना न छोड़ा और भयानक विष से भी भयभीत होकर अपने उद्योग से न चूके, जब तक अमृत निकाले विश्राम न लिया इससे यह सिद्ध हुआ कि धीर लोग अपने निश्चित अर्थ को बिना [illegible]

[illegible]

[illegible]

सुख दुःख दोनों को नहीं गिनते ॥ ८२ ॥

स्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो।
ययोपशमःश्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः॥
धस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता।
मपि सर्वकारणमिदं शीलंपरं भूषणम् ॥ ८३

भा० टीका) ऐश्वर्यका भूषण सज्जनता शूरताका संयम अर्थात् अभिमानके वचन न कहना, ज्ञान शांति, शास्त्रपढने का विनय, धनका पात्रको देना, स्या का क्रोध न करना, प्रभुता का क्षमा, धर्मका छलता, अन्य सर्व गुणों का भूषण और कारण ल है ॥ ८३ ॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदिवा स्तुवन्तु लक्ष्मीः
समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
द्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
याय्यात्पथःप्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ८४ ॥

(भा० टीका) नीति जाननेवाले चाहें निंदाकरें चाहे स्तुति, और लक्ष्मी चाहे घरमें बहुतसी आवे चाहे चली जाय, प्राण चाहे अभी जाय चाहे कल्पांत में, परन्तु धीर लोग न्यायका मार्ग छोडकर एक पगभी उससे बाहर नहीं चलते ॥ ८४ ॥

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षु
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातःपथा
लोकाःपश्यतदैवमेवहिनृणांवृद्धौक्षयेकारणम् ॥

(भाषा टी०) ऐसा सर्प जिसे जीवनकी अ
नहीं पिटारे में बंद रहने से उसका शरीर पीडि
और क्षुधा से उसकी सब इंद्रियां शिथिल होर
मूषक (चूहा) रातको उस पिटारे में छेद करके
से उस सर्प के मुख में गिरा वह उस मूसे के मां
तृप्त होकर उसी छेदके रस्तेसे निकल गया सो हे ल
देखो कि ऐसेही मनुष्यों के क्षय और वृद्धि में दै
कारण है ॥ ८५ ॥

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधु वृत्तानामस्थायिन्यो विपत्त
(भा० टी०)–हाथों की ताडना से गिराभी
[illegible] उछलता है इस से यह प्रगट हुआ कि [illegible]
[illegible] की विपत्ति सदास्थिर नहीं होती ॥
आलस्यंहि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥
(भा० टी०) आलस्य मनुष्यों के शरीर में [illegible]

शत्रु है, उद्योग समान दूसरा बंधु नहीं कि जिसके करनेसे दुःख नहीं आता ॥ ८७ ॥

छिन्नोऽपिरोहति तरुःक्षीणोप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशंतः सन्तः संतप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥

(भा० टी०) छांटाहुआ वृक्ष फिर बढकर फैलजाता है, चंद्रमा क्षीण होकर फिर बढकर पूर्ण होजाता है, इस से विचार करनेवाले संत विपत्ति से संतापको प्राप्त नहीं होते ॥ ८८ ॥

इति धैर्य प्रशंसा । अथ दैवप्रशंसा ।

नेतायस्य बृहस्पतिःप्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः ।
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहःकिल हरेरैरावतोवारणः ॥
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपिबलिभिर्भग्नःपरैः संगरे ।
तद्व्यक्तंवरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथापौरुषम्॥

(भा० टीका०) बृहस्पति ऐसे मंत्री, वज्र ऐसा शस्त्र, देवताओंकी सेना ऐसी सेना, स्वर्ग ऐसा गढ, ऐरावतसा चढनेको हाथी और तिसपर विष्णु का पूर्ण अनुग्रह तोभी ऐसे आश्चर्य की सामग्री वाला इंद्र शत्रुओं से संग्राम में हारताही रहा, इससे यह सिद्ध हुआकि दैव ही मुख्यकर शरण के योग्य है पुरुषार्थ वृथा है और उसको धिक्कार है ॥ ८९ ॥

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥

(भा० टी०) यद्यपि मनुष्यों को फल कर्म के अनुसारही मिलते हैं और बुद्धिभी कर्म के अनुसार होजाती है तो भी बुद्धिमानों को विचारही के काम करना चाहिये ॥ ६० ॥

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके ।
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ॥
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः ।
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥

(भा० टी०) खल्वाट अर्थात् गंजा पुरुषका सिर सूर्यकी किरणोंसे जलने लगा तब वह छायाकी इच्छा करताहुआ दैवसंयोगसे तालके वृक्ष के नीचे जा खडा हुआ तहां जातेही शीघ्र बडा फल ऊपरसे सिरपर गिरा उसका सिर फूटा तिसका बडा शब्द हुआ इससे यह सिद्ध हुआ कि भाग्यहीन पुरुष जहां जाता है वहां विपत्ति भी उसके साथही साथ जाती है ॥ ६१ ॥

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् । मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥ ६२ ॥

भा० टी०—हाथी और सर्प इन दोनोंको बन्धन देखतेहैं चन्द्रमा और सूर्यकोभी राहुग्रहसे पीडित देख हैं, और पंडितोंको दरिद्री देखते हैं इससे हमारे सम में विधाताही बलवान दीख पडता है ॥ ९२ ॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं ।
पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ॥
तदपितत्क्षणभङ्गिकरोतिचे- ।
दहह कष्टमपण्डितताविधे ॥

भा० टीका-प्रथम विधाता पुरुषरत्नको सब गुणोंके खानि और पृथ्वी का भूषण रचता है परन्तु उसक शरीर क्षणभंगुर करते हैं यह बडे दुःखकी बात है औ इसमें विधाताकी मूर्खता जान पडती है ॥ ९१ ॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्यकिं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारानैवपतन्तिचातकमुखे मेघस्यकिं दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुंकःक्षमः।

(भा० टी०) करीरके वृक्ष में पत्ते नहीं लगते तो इसमें वसंतऋतुका क्या दोष है, घूघू पक्षी दिनमें नहीं देखता तो सूर्य का इसमें क्या दोष है औ

इसमें मेघका क्या दोष है, इससे यह जान पडता है
विधाता ने जो प्रथम ललाट में लिखदिया है उ
मिटाने की किसीको सामर्थ्य नहीं हैं ॥ ६४ ॥

अथ कर्म प्रशंसा ।

नमस्यामो देवान्नु हतविधेस्तेऽपि वशगा ।
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किंच विधिना ।
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति

भा० टी०—देवताओं को हम नमस्कार करते
परन्तु उनको विधाता के वश में देखते हैं इसलि
विधाता को नमस्कार करते हैं पर विधाता भी हमा
पूर्व निश्चित कर्म के अनुसार फल देता है फिर
फल और विधाता दोनों कर्म के आधीन हैं तो
और विधाता से क्या काम है इस कारण से कर्मों
नमस्कार है क्योंकि विधाता का भी सामर्थ्य निव
नहीं सकता ॥ ६५ ॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
[illegible]

भा० टीका) जिस कर्म ने ब्रह्माको कुम्हार के समान निरंतर ब्रह्मांड रचनाके हेतु बनाया, और विष्णु को बारंबार दस अवतार ग्रहण करने के संकट में डाला और रुद्रको कपाल हाथमें लेकर भिक्षा मांगने के कष्ट में डाला और सूर्य को आकाशमें नित भ्रमण चक्र में डाला उस कर्मको प्रणाम है ॥ ९६ ॥

नैवाकृतिःफलति नैव कुलं न शीलं ।
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलुसञ्चितानि ।
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥

(भा० टीका) पुरुषकी सुन्दर आकृति कुछ फल नहीं देती और न उत्तम कुल, शील, विद्या, और बड़े यत्नसे कीहुई सेवाभी फल नहीं देती एक पूर्वतपस्याके संचित किये हुए भाग्यही मनुष्यों को समय समय पर वृक्ष के तुल्य फल देते हैं ॥ ९७ ॥

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तंप्रमत्तंविषम स्थितंवारक्षन्ति पुण्यानि पुरा[illegible]नि

(भा० टी०) वन, रण, शत्रु, अग्नि, [illegible] के समुद्र में पर्वत के शिखर में सोते [illegible] और विषम अवस्था में पुरुष के [illegible] रक्षा करते हैं ॥ ९८ ॥

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खा[illegible]
मत्यक्षं कुरुते परोक्षम मृतं हलाहलं [illegible]
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फ[illegible]
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथ[illegible]

(भा० टी०) जो सत्क्रिया खलोंको [illegible]
और मूर्खों को पंडितता, शत्रुओंको मित्रत[illegible]
को प्रगट और विषको अमृत करदेती है [illegible]
रूपी भगवती की आराधना करो, हे स[illegible]
वांछित फल भोगा चाहो तो कष्ट और हठ [illegible]
गुणों के साधनमें वृथा श्रम न करो ॥ ९९ [illegible]

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ ।
परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन ॥
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते ।
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः [illegible]

(भा० टी०) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ १०० ॥

[illegible]

शीलांकुलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ॥
ाकर्पूरखंडान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणांसमंतात्॥
मां कर्मभूमिं नचरति मनुजोयस्तपो मंद भाग्यः

(भा० टी०) वह पुरुष मानो मरकतमणि के
न में लहशुनको चंदनके ईंधन से पकाता है और
में सोने का हल चलाकर आक वृक्षकी जडको
ाने के हेतु निकालता है और कपूर के टुकडे खोके
कर कोदो के चारों ओर ढेंढकार बनाता है
मंदभागी मनुष्य इस कर्म भूमिमें आकर तप नहीं
॥ ॥ १०१ ॥

ज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जय त्वाहवे ।
णिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याःकलाः शिक्षतु॥
काशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं ॥
भाव्यं भवतीदकर्मवशतो भाव्यस्य नाशःकुतः ॥

(भा० टी०) चाहे समुद्रमें डूबो चाहे सुमेरुके सिर
चढ़ जाओ चाहे घोर संग्राम में शत्रुओं को जीतो
है और वनिज खेती से वा आदि विद्याकी नाना
ा करो और आकाश में पक्षीके समान बडे यत्न से
ः फिरो पर अनहोनी नहीं होनी और जो कर्म वश
ी है सो नहीं टलती ॥ १०२ ॥

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं ।
सर्वोजनः सुजनतामुपयाति तस्य ॥
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा ।
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥

(भा० टी०) भयानक वन उस पुरुष के लिये अच्छा नगर होजाता है और सब जन उसके मित्र होजाते हैं और सम्पूर्ण पृथ्वी उसके निकट रत्नों से परिपूर्ण होजाती है जिस पुरुषका पूर्व जन्मका बहुतसा, संचय किया भया पुण्य है ॥ १०३ ॥

अथ प्रत्यन्तरे श्लोकाः ।

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः संगतिः ।
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्वे रतिः ।
कः शूरोविजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता किं धनं
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलं ।

भा० टीका–लाभ क्या है गुणियों की संगति, दुःख क्या मूर्खों का संग, हानि क्या समय पर चूकना, निपुनता क्या धर्म में रति होना, शूर कौन है जिसने इंद्रियों को वश में किया, स्त्री कौन अच्छी है, जो अनुकूल हो, धन क्या है विद्या, सुख क्या है परदेश न होना, राज्य क्याहै अपनी आज्ञा चलना ॥१०४॥

मालतीकुसुमस्येवद्वे गतीह मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥

भा० टी०—मालती के फूलों के समान मनस्वी (धीर) पुरुषकी दो वृत्ति होती हैं या तो सब लोगों के मस्तक पर रहैं अथवा वनमेंही नष्ट होजांय॥ १०५

अप्रिय वचनदरिद्रैः प्रिय वचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥

(भा० टी०) अप्रिय वचनके तो दरिद्र प्रिय वचनों से संपन्न अपनीही स्त्रीसे संतुष्ट और पराई निंदासे रहित जो पुरुष हैं उनसे कहीं कहीं ही पृथ्वी शोभाय- मान है अर्थात् ऐसे पुरुष सब ठौर नहीं होते॥ १०६॥

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न
शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ॥
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः ।
शिखा याति कदाचिदेव ॥ १०७ ॥

(भावा टी०) क्लेशित जन यदि धैर्यवृत्तिवाला होय तो उसकी धैर्यवृत्तिको नहीं मिटा सक्ता जैसे प्रज्वलित अग्निको उल्टा करदें तोभी ज्वाला ऊपर ही को रहती है नीचे नहीं जाती ॥ १०७ ॥

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य ।

चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ॥
कर्षन्ति भूरिविषया श्च न लोभपाशै- ॥
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥

भा० टी०—स्त्रियों के कटाक्ष रूपी बाण जिसके चित्तको नहीं बेधते और क्रोध रूपी अग्निकी आंच जिसके चित्तको नहीं जलाती और इंद्रियों के विषय लोभ फांसी में डालकर जिसके चितको नहीं खींचते वही धीर पुरुष तीनों लोक को जीतता है ॥ १०८॥

एकेनापिहिशूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेवपरिस्फुरिततेजसा ॥

(भा० टी०) एकही अकेला शूर सारी पृथ्वी को पांव तले दबाकर बश कर लेता है जैसे अकेला तेजस्वी सूर्य सारे जगतको प्रकाशित करता है ॥१०९

वह्निस्तस्यजलायतेजलनिधिःकुल्यायते तत्क्षणान्मेरुः
स्वल्पं शिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते ॥
व्यालोमाल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते ।
यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतमशील समुन्मीलति ॥

(भा० टी०) अग्नि उस पुरुष को जलके समान जान पड़ती है, और समुद्र स्वल्प नदीसा उसको तत्काल दीख पड़ताहै, मेरुपर्वत स्वल्प शिलाके तुल्य

सूझ पडता है, सिंह शीघ्रही उसके आगे हिरन बन जाता है, सर्प उसके लिये फूलकी माला सा बनजाता है और विषरस उस पुरुषको अमृतकी वृष्टि के समान होजाता है जिस पुरुष के अंग में समस्त जगत् का मोहने वाला शील प्रकाशमान है ॥ ११० ॥

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा- ।
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ॥
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति ।
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥

(भा० टीका) लज्जादि गुणों के समूहको उत्पन्न करने वाली और अपनी माता के समान शुद्ध हृदय और स्वाधीन रहने वाली प्रतिज्ञाको तेजस्वी और सत्य व्रत के धारणकरने वाले पुरुष नहीं छोडते परन्तु अपना प्राणभी सुखसे त्याग करदेते हैं ॥ १११ ॥

इति भर्तृहरिकृत नीतिशतक की भाषा टीका सम्पूर्ण ।

श्रीभर्तृहरिकृतं नीतिशतकं समाप्तम् ।



अथ भर्तृहरिविरचितम् ।

(शृंगारशतकं प्रारंभ्यते)

शम्भुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां ।
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ॥
वाचा मगोचरचरित्रविचित्रताय ।
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

(भा० टीका) जिसने शिव ब्रह्मा और विष्णु को भी स्त्रियों के गृहकार्य करनेके लिये दास बना रक्खा है और विचित्र में चतुर जिसका वर्णन नहीं होसका ऐसे पुष्पायुध कामदेवको नमस्कार है ॥ १ ॥

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया ।
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ॥
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया ।
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥ २ ॥

(भा० टी०) मंद मुसकाना, लज्जित होना, मुख फेर लेना, अर्द्धकटाक्षसे देखना, मधुर वचन से बोलना,

ईर्षासे कलह करना और अनेक चरित्र दिखाना इन सब प्रकारों से स्त्री बंधन रूपही है ॥ २॥

भ्रचातुर्यांकुंचिताक्षाः कटाक्षाः ।
स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ॥
लीला मन्दं प्रस्थितं च स्थितं च ।
स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ ३ ॥

(भा० टी०) भौंह फेरनेकी चतुराई, अर्ध नेत्र से कटाक्षचलाना मीठी बातें बोलना, लज्जित हो हंसना, लीला से मंद मंद चलना और घूम के खडे होजाना स्त्रियोंके यह सहज गुण और शस्त्र अर्थात् इन्हीं भावों से पुरुषों को मारती हैं ॥ ३ ॥

क्वचित्सुभ्रूभंगैः क्वचिदपि च लज्जा परिणतैः ।
क्वचिद्भीतित्रस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलासितैः ॥
नवोढानामेभिर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैः ।
स्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दिशः ॥ ४ ॥

(भा० टी०) किसी समय सुन्दर भौंह से कटाक्ष करता, कभी लज्जासे शोभायमान दिखाई पडता कभी भयसे भीत होता और कभी लीलादी से विलासों को धारण करता है इसभांति नेत्रोंसे शोभित नवीन स्त्रियों का जो मुख कमल है उससे दृष्टि ऐसी व्याप्त हो रही है जैसे नील कमल के समूहसे ॥ ४ ॥

वक्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने ।
वर्णःस्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुःकचानाञ्चयः ॥
वक्षोजाविभकुम्भसंभ्रमहरौगुर्वीनितंबस्थली ।
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मंडनं ॥

(भा० टी०) चन्द्रमा को फीका करनेवाला मुख, कमल के हंसने वाला नेत्र, सुवर्णकी दमक को मंद करनेवाली देहकी कांति, भौंरों के पुंजको जीतनेवाले केश, गजमस्तकको शोभाहरनेवाले स्तन और विशाल भारी दोनों नितंब और मन कोमलवाणी हरने वाली ये सब स्त्रियों में स्वाभाविक भूषण हैं ॥ ५ ॥

स्मितं किंचिद्वक्त्रे सरलतरलो दृष्टि विभवः ।
परिस्पंदो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः ॥
गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः ।
स्पृशंत्यास्तारुण्यं किमिहि न हि रम्यं मृगदृशः

(भा० टी०) मंद मुसकुराता हुआ मुख, सीधे और चंचल दृष्टि पात करना, नये नये विलास उक्तिसे सरस बात करना, लीला से कमल के समान मंद मंद गति से गमनका आरम्भ करना, युवा अवस्था चढतेही क्या क्या सुन्दर हाव भाव स्त्रियोंमें नहीं उत्पन्न होते ॥ ६ ॥

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं मुखं ।

घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः ॥
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनु ।
ध्येयं किं नवयौवनं सुहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥७॥

(भा० टी०) रसिकों के देखने योग्य वस्तुओं में उत्तम वस्तु क्या है मृगनयनी नायकों का प्रेमसे प्रसन्न वदन, सूंघनेकी वस्तुमें उनके मुखकी भाफ, सुनने में मधुरवाणी, स्वादिक वस्तुमें उनके अधर पल्लवका रस, स्पर्शकी वस्तु में उनका शरीर, और ध्यान करने के योग्य उनका यौवन और विलास है ॥ ७ ॥

एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थः
झङ्कार नूपुर रवाहृत राजहंस्यः ॥
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो ।
वित्रस्तमुग्धहरिणी सदृशैः कटाक्षैः ॥ ८ ॥

(भाषा टी०) ऐसी स्त्रियां जिनके चंचल कंकणोंके शब्द क्षुद्र घंटिका (कोंदनी) की ध्वनि और नूपुर के झनकार ने राजहंसनियोंकी चाल जीत लिया है वे तरुणी भड़की हरिणी के समान नेत्रपात कर किसके मनको विवश नहीं करतीं ॥ ८ ॥

कुंकुमपङ्ककलङ्कितदेहा गौरपयोधर कम्पितहारा ।
नूपुरहंसरणत्पदपद्मा कं न वशीकुरुते [illegible] ॥

भा० टी०—केशर और चन्दन से जिनकी देह शोभित होरही है गोरे गोरे स्तनोंपर हार झूलताहै और चरणकमल में प्रेम से नूपुर बोलतेहैं ऐसी सुन्दर स्त्रियां इस पृथ्वी पर किस पुरुषका मन नहीं मोह लेतीं ॥ ९ ॥

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा ।
येनित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम् ॥
याभिर्विलोल तरतारक दृष्टिपातैः ।
शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथंताः ॥

(भा० टी०) वे श्रेष्ठ कवि निश्चित उलटी समुझ वाले हैं जिन्होंने स्त्रियों का नाम अबला रक्खा है। जिनकी चंचल पुतलियों के कटाक्षमे इन्द्रादिकभी हार मानते हैं भला कहो तो वे अबला कैसे हैं ॥ १० ॥

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसंचारसूचितेषु प्रवर्तते ॥ ११ ॥

(भा० टी०)—कामदेव निश्चय करके स्त्रियोंका आज्ञाकारी सेवक है क्योंकि जिसे वह आंखों से सैन कर देती हैं उसी पुरुषको दबा लेती हैं ॥ ११ ॥

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने ।
अन्तर्वक्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः
मुक्तानां सतताधिवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वय- ।

मितं तन्वि वपुःप्रशांतमपितेप्रक्षोभकरोत्येवनः॥

(भा० टी०) केश संयमी हैं अर्थात् सुगंधित तैल युक्त कंघीसे संवारे, नेत्र दोनों श्रुतिके पार होगये हैं अर्थात् कार्नोतक अत्यन्त विशाल हैं, मुख अन्तर से सहजही शुचि अर्थात् विमल है और द्विजों के समूहसे भी अर्थात् दांतोंकी पंक्ति के किरण से चमकते, और दोनों स्तन कलश से मुक्ता का वास निरंतर अर्थात् मोतियोंकी मालासे शोभित हैं, सुक्ष्म अंगवाली स्त्री तरा शरीर शांतस्वरूपभी है अर्थात् संयमी नियमी श्रुति वेद का पारगामी शुचि पवित्र द्विज ब्राह्मण और मुक्त विरक्त पुरुष इनसे युक्त है, पर मुझे तो अनुरागही उत्पन्न करता है॥ १२॥

मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते।
यथा हरसिचेतांसि गुणेनैव नसायकैः॥

(भा० टीका) हे सुन्दरी तेरी यह धनुष क्रिया में कुशलता विचित्र देख पडती है जो सर्व० चित्तको गुण अर्थात् प्रत्यंचा वा चतुराई ही से बींधती है वाण से नहीं॥ १३॥

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमो भूतमिदं जगत्॥

(भा० टी०) दीपक, अग्नि, तारे सूर्य, और चन्द्र
ये सब हैं परन्तु एक मृगनयनी मेरी स्त्री बिना मु
सब जग अंधेरा है ॥ १४ ॥

यद्वृत्तःस्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलते ।
रागान्धेषु तदोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम्।
सौभाग्याक्षर पंक्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं।
मध्यस्यापि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा

(भा० टीका) उन्नत स्तनके भार चंचल नेत्र औ
भ्रूलता और राग भरे नवीन पत्तों से दोनों अधर पल्ल
ये रागसे अंधे रसिकोंके शरीरमें पीडा करें तो करें क्
कि कामदेवके हाथकी लिखी तेरे मस्तक में सौभाग्य
अक्षरोंकी पंक्ति है परन्तु मध्यस्थ रोमावली क्यों अधि
ताप देती है तात्पर्य यह है कि उन्नत चंचल रागवा
प्रायःपीडादेतीहीहै परन्तु मध्यस्थ जिसका काम छुडादे
का है वह रोमावली क्यों अधिक पीडा देती है अर्था
विपरीत करती है ॥ १५ ॥

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता ।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा॥

(भा० टी०) स्तनोंके भारसे गुरु प्रकाशमान मुखरू
चंद्र और दोनों चरण से मंदगामी ग्रहमयसी वह स्त्री

होता है सौ अर्थात् गुरु तुरदपानि मंदगामी यान पंक्त प्रसिद्ध ही है इन सबोंका नामही प्रकाशित है ॥१६॥

तस्याःस्तनौ यदि घनौ जघनं विहारि ।
यक्त्र च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम् ।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा ।
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥

(भा० टी०) जिस स्त्रीके स्तन पुष्ट और जंघन विहार करने योग्य हैं और मुख सुन्दर है तो उन्हें देख कर हे चित्त क्यों व्याकुल होता है यदि उनमें तेरी वांछा होय तो पुण्य कर क्योंकि पुण्य बिना मनोरथ सिद्ध नहीं होते ॥ १७ ॥

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्य- ।
मार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ॥
सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणा ।
मुतस्मरस्मेर विलासिनीनाम् ।

(भा० टी०) हे पंडितो मत्सरताका त्यागि और मर्यादा सहित विचार कर कहो के तो पर्वतहीके नितंब सेवने योग्य है कि कामदेवकी उमंगसे मुसकुराती विलासिनी स्त्रियोंके नितंबही सेवने योग्य हैं नितंब पर्वतके मध्यभाग और स्त्रियोंके कटीके पश्चात् भागको कहते हैं ॥१८॥

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां तत्त्वज्ञानामृताम्भः प्लुतललित धियां यातु कालः कदाचित् ॥ नोचेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोग संभोगिनीनां। स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतल स्पर्श लोलोद्यतानाम् ॥ १९ ॥

(भा० टी०) यह असार संसार जिसकी अवस्था अति चंचल है उस में पंडितों के हेतु दो सुलभगति हैं के तो तत्त्वज्ञानरूपी अमृतरस में स्नान करनेवाली जिनकी निर्मल बुद्धि है उनका काल अच्छा व्यतीत होता है अथवा सुंदर कामिनी पुष्टस्तन और जघनसे भोगमें सुखदाई जो स्त्री उनके शरीर पर हाथ दिये चंचलतासे उद्योग में जो तत्पर हैं उनका काल भली भांति व्यतीत होता है ॥ १९ ॥

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैःशिरोरुहैः ।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजेरत्नमयीव सा ॥

(भा० टी०) चंद्रकांत मुख, महानील केश और दोनों पद्मराग हाथोंसे ऐसी रत्नमय वह स्त्री शोभा देती है अर्थात् चन्द्रकांत, महानील, पद्मराग, तीन प्रकारकी मणि रूप स्त्री शोभित होती है ॥ २० ॥

संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति ।

निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ॥
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां किं ।
नामवामनयना न समाचरन्ति ॥ २१ ॥

(भा० टी०) मोह लेती, वश कर देती, विडंबना कराती डांट झिड़कन देती रमण कराती और विरह का विषाद देती है ये स्त्रियां मनुष्यके सदय हृदय में प्रवेश करके क्या नहीं करती हैं ॥ २१ ॥

विश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणां ।
छायासुतन्वी विचचारकाचित् ॥
स्तनोत्तरीयेण करोद्धृतेन ।
निवारयन्ती शशिनोमयूखान् ॥

(भा० टी०) वनके वृक्षोंकी छायामें विश्राम लेती कोई एक स्त्री हाथसे अपने स्तनोंके आंचल उठाये चन्द्रमाकी किरणों को रोकती हुई जाती है। यहां कृष्णाभिसारिका नायका जानो ॥ २२ ॥

अदर्शनेदर्शनमात्रकामा ।
दृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैक लोला ॥
आलिङ्गितायां पुनरायताक्ष्या ।
माशास्महे विग्रहयोरभेदम् ॥ २३ ॥

(भा० टी०) जबतक हम स्त्री को नहीं देखते तब

सकतो देखने ही की इच्छा रहतीहै देखतेहैं तब अा
आलिंगन रसका सुख चाहते हैं और लिपटने पर
अभिलाषा रखते हैं कि यह मृगनयनी हमारे शरीर
विलग न हो ॥ २३ ॥

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी ।
चन्दनंवपुषि कुंकुमान्वितम् ॥
वक्षसि प्रियतमा मनो हरा ।
स्वर्ग एष परिशिष्ट आगतः ॥ २४ ॥

(भाषा टी०) शीघ्र खिलनेवाली मालतीकी कलि
की माला गले में पहिने हों, केसर युक्त चन्दन अं
में लगाये हों, और सुन्दर प्यारी स्त्रियों को छाती
लिपटाये हों तो यह जानो कि शेष स्वर्गका भोग बा
प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥

प्राङ्मामेति मनागमानितगुणं जाताभिलापं ततः ।
सव्रीडं तदनु श्लथीद्यत मनुप्रत्यस्तधैर्यं पुनः ॥
प्रेमार्द्रस्पृहणी यनिर्भररहः क्रीडा प्रगल्भा ततोनिः ।
शङ्काङ्गविकर्षणादिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥

भा० टी०—पहिले तो नहीं नहीं करना यह मनोहर
गुण उसमें है फिर अभिलाषा उत्पन्न होना और लज्जा
से शरीर को ढांक देना धैर्य्य छोड़ना प्रेमरससे भी बना

योग्य एकान्त क्रीडा का चातुर्य विस्तार करना
दर हो अंग खिचने का [illegible] सुखलाभ करना
निश्चय जानो कि कुल स्त्रियों की रति अच्छी
है ॥ २५ ॥

ति निपतितानां स्मस्तधीम्मलस्कानां ।
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानाम् ॥
सुरतजनितखेदस्वादगण्डस्थलानां ।
मधरमधू वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ॥

(भा० टी०) छाती पर लेटी हुई हैं और सुगंधित
दा उनके खिले हुए हैं, आधे नेत्र मूंदे हुए हैं कुछ कुछ
दि रही हैं मैथुन के श्रमसे उनके गालों पर पसीने
झलक रहे हैं ऐसी स्त्रियों के अधरमधुको भाग्यवान ही
पुरुष पान करते हैं ॥ २६ ॥

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनु संविदं कुरुते ॥
मिथुनैर्मिथोवधारितम वितथमिदमेव कामनिर्वहणं ॥

(भा० टी०) आलस्य भरी नेत्रवाली स्त्रियों को
काम से तृप्ति करना यही स्त्री पुरुष दोनों का परस्पर
काम पूजन है ॥ २७ ॥

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां ।
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः ॥

तदपि च न कृतं नितम्बिनीनां ।
स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा ॥ २८ ॥

(भा० टी०) यह विधाताने पुरुषोंमें बडी अनुचि[illegible]
और उलटी बात उत्पन्न की है कि बुढापेमें भी कामक
विकार प्रगट होता है ऐसाही स्त्रियोंको भी नहीं कि[illegible]
कि जबलों स्तन न गिरें तभी लों जिए और काम चे[illegible]
स्पर्श ॥ २८ ॥

एतत्कामफलंलोकेयुद्वयोरेकचित्तता ।
अन्यचित्तकृतेकामे शवयोरिव संगमः ॥

(भा० टी०) स्त्री पुरुष के समागम में एक चि[illegible]
होजाना कामदेवका यही मुख्य फल है, यदि का[illegible]
दोनोंका चित्त और ठौर रहा तो मृतकों का सा संग[illegible]
होता है ॥ २९ ॥

प्रणयमधुराःप्रेमोद्गाढा रसादलसास्तथा ।
भणितिमधुरा मुग्धप्रायाःप्रकाशितसंमदाः ॥
प्रकृतिसुभगा विस्रम्भार्द्राःस्मरोदयदायिनो
रहसि किमपि स्वैरालापा हरन्ति मृगीदृशाम् ॥

(भा० टीका) मृगीदृगा के मीठेप्रेमरसकी पूर्णता[illegible]
टोटे स्वासे सुनाई सुननेमें सुन्दर आनन्द प्रकाश[illegible]
करें सहजही सुंदर विश्वास के योग्य अर्थात् कामदे[illegible]

उदय करनेवाले ऐसे एकान्त में स्त्रियों के स्वच्छन्द
... मनको हरण करलेते हैं ॥ ३० ॥

आवासः क्रियतां गाङ्गे पापवारिणि वारिणि ।
स्तनमध्ये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि ॥

(भा० टी०) पाप हरनेवाला है जल जिसका ऐसी श्रीगंगाजी के तटपर बसे अथवा युवा स्त्रीके उस स्तनों के मध्यमें बसे, जो मनको वशमें करलेताहै और जिस पर हार पड़ा हुआ है ॥ ३१ ॥

... नयपुरतो युवतीनां तावत्तदमातनोतु हृदि मानः ।
... भवति न यावच्चंदनतरुसुरभिर्मधुनिर्मलःपवनः ॥

(भा० टीका) गर्ववाली स्त्रियोंके हृदयमें यह प्रसिद्ध मान तभी लों ठहरता है जबलों चंदनकी सुगंधि भरी मलयाचल की स्वच्छ वायु नहीं चलती ॥ ३२ ॥

अथ ऋतुवर्णनम् । तत्रादौ वसन्तस्य ॥

परिमलभृतो वाताः शाखा नवांकुर कोटयो ।
मधुरविरतोत्कण्ठा वाचःप्रियाःपिकपक्षिणाम्॥
विरलसुरतस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः ॥
प्रसरति मधौरात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः॥

(भा० टीका) सुगंधित पवन चल रही है, वृक्षोंकी शाखों में नये पत्रों के अंकुर निकले हैं, कोकिलाओं

पक्षियोंकी वाणी मधुर सुन्दर उत्कण्ठा भरी
लगती है, और स्त्रियों के मुखचन्द्र पर रतिश्र
विलग प्रस्वेद बूंद के कणें शोभित हैं ऐसी वसंत
की रात्रिमें किस किस वस्तु में गुणकी ज्योति
प्रकाश होती हैं ॥ ३३ ॥

मधुरयं मधुरैरपिकोकिला ।
कलकलैर्मलयस्य च वायुभिः ॥
विरहिणः प्रणिहन्ति शरीरिणो ।
विपदि हन्त सुधापि विषायते ॥

(भा० टी०) मधु- मधुर कोकिलों के शब्द अ
मलियाचल के पवन से यह चैत्रमास विरहियोंको
करता है इससे यह जान पडता है कि विपत्तिमें अ
भी विष होजाता है ॥ ३४ ॥

आवासः किल किंचिदेव दयितापार्श्वे विलासालस
कर्णे कोकिलकाकली कलरवः स्मेरो लतामण्डपः
गोष्ठीसत्कविभिःसम कतिपयेःसेव्याःसितांशोःकराः
केशाचित्सुखयन्ति नेत्रहृदये चैत्रे विचित्राः चपाः ।

(भा० टी०) किल किंचित् विलास से शिथिल
हो प्यारी के संग रहना, कानसे कोकिला के शब्दकी
कलकलाहट सुनना और चांदनीका सुख उठाना, ऐसी

ी से चैत्रमासकी विचित्र रातें किसी पुण्यवानही
दय और नेत्रों को सुख देतीहुई बीतती हैं किछ
वत् हाव भाव उसे कहते हैं कि जहां कोप, आंसु,
, प्रीति और रुलाई ये सब भाव एकही समय होंय॥

न्यस्त्रीविरहानलाहुतिकलामातन्वती मञ्जरी।
कं:देषु पिकाङ्गनाभिरधुना सोत्कण्ठमालोक्यते॥
प्येते नवपाटलापरिमलाः प्राग्भारपाटच्चरा।
ाति क्लांतिवितानतानवकृतः श्रीखण्डशैलानिलाः॥

(भाषा टी०) बटोहियोंकी जो विरहिनी स्त्रियां
इनकी विरहाग्निमें आहुति कला फैलाती हुई जो आम
, बौर के उन्हें कोकिला बड़े अभिलाष से देखती हैं,
ल बसन्तऋतुमें ऐ नवीन पाटल पुष्प के सुगन्ध के
पुंजको चुराने वाले और विरह विस्तारको नया करने
वाले मलयाचलके पवनभी गमन करते हैं॥ ३६॥

सहकारकुसुमकेसर निकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते॥
मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा॥

(भा० टी०) आमकी बौरकी जो केसर उसके समूह
। सुगन्ध दिशाओंमें छाय रही और मीठे मीठे मक-
न्द पानकर जिसमें भ्रमर उन्मत्त होरहे हैं ऐसे ऋतुराज.
बसन्तमें किये उत्कण्ठा नहीं होती॥ ३७॥

अथ ग्रीष्मवर्णनम् ।

अच्छाच्छचन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्यो ।
धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च ॥
मन्दो मरुत्सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठं ।
ग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्द्धयन्ति ॥

(भा० टी०) अति स्वच्छ चन्दन के रस से स्त्रियोंका हाथ भींगा है फुहारेवाले मंदिर, मन्द सुगंधि पुष्प, विकसित चांदनी, सुगन्धित लता, मन्द मन्द पवन और महलकी श्वेत छत ये सब सामग्री ग्रीष्मके कामदेवके और मदको बढाते हैं ॥ ३८ ॥

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्र किरणाः ।
परागः कासारो मलयजरजः सीधु विशदम् ॥
शुचिः सौधोत्सङ्गः प्रतनु वसनं पङ्कजदृशो ।
निदाघे तूर्णंतत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः ॥

भा० टी०—अच्छी सुगंधित माळा, पंखेका व चांदनी पुष्पोंका पराग, तडाग, चंदन उज्वल, मद्य, धामकी अच्छी ऊंची छत, अच्छे मलमलसे महीन और कमलनयनी सुन्दर स्त्री इत्यादि पदार्थोंसे ग्रीष्म ऋतुमें पुण्यवान् पुरुष सुख उठाते हैं ॥ ३९ ॥

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मिः शशधरः ।

...कांभोजं मलयजरजश्चातिसुरभि ॥
...हृद्यामोदास्तदिदमखिलं रागिणि जने ।
...त्यन्तःक्षोभं न तु विषय संसर्गविमुखे ॥

(भा० टी०) चूना सफेद से अच्छा उज्वल धाम ...मिल चांदनीका चन्द्रमा, प्यारी का मुख कमल, सुगं... त चन्दन, अच्छे सुगंधित पुष्पोंकी माला ये सब वस्तु ...नुरागी पुरुषों के हृदय में अत्यन्त क्षोभ करते हैं, परन्तु विषयके संसर्ग से जो विमुख हैं उनके हृदयमें नहीं॥४०

अथ वर्षा समय।

...रुणी वेषा दीपितकामा विकसित जातीपुष्पसुगंधिः
...न्नतपीनपयोधर भारा प्रावृट् कुरुतेकस्य न हर्षम् ॥

(भा० टी०) तरुणीके वेषवाली, कामदेवको उदित करनेवाली, जातिपुष्पके सुगन्धको विकाश करनेवाली, जिसके पुष्ट पयोधर के भार उन्नत हैं ऐसी यह वर्षा-ऋतु किसको नहीं हर्षित करती है जाती जूही लताका जाथिश्री पयोधर मेघ और स्तनको भी कहते हैं ॥४१॥

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्यो ।
नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः ॥
शिखिकुलकलकेकारावरम्या वनान्ताः ।
सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ॥

(भा० टी०) मेघ से व्याप्त आकाश और प्रफुल्लि
पृथ्वी अर्थात् नयेरअंकुरोंपर ओसके जलसे पूर्ण,नई
कुटज और कदम्ब के पुष्पोंके समूहों से सुगंधित वा
और मयूरों की झुंडकी सुन्दर वाणी से रमणीय वन
प्रांत, सब सुखी और दुःखी पुरुषों को उत्कण्ठा कामदे
की इच्छा देते हैं ॥ ४२ ॥

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोपिनर्तितमयूराः।
वसुधाकंदलधवलादृष्टिं पथिकः क यातु संत्रस्तः॥

(भा० टी०) ऊपर घनघोर छाय रहाहै, दहिने बां
पहाड़ों में मयूर नाच रहेहैं नीचे भूमिकी दूब ओसों
भीनाय होरही है ऐसे समयमें दीन बटोहियोंको संत
कहां से आवें अर्थात् चारों ओर विरह के उद्दीपन
करनेवाले सब समान हैं ॥ ४३ ॥

इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकितरोः।
स्फुरद्गन्धः प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः॥
इतः केकिक्रीडा कलकलरवः पक्ष्मलदृशां
यास्यन्त्येते विरहदिवसाः संभृतरसाः॥

(भा० टी०) एक ओर बिजली (बिजली) [illegible]
[illegible] केतकी के [illegible]
[illegible]

(मोर) की मीठा का कलर शब्द ये सब जहां एकत्र हैं वे विरहके स्मरनेरे दिन स्त्रियों के किस भांति वीतेंगे ॥ ४४ ॥

असूचीसंसारे तमसि नभसि प्रौढजलद ।
ध्वनिप्राज्ञे तस्मिन् पतति दृषदां नीर निचये ॥
इदं सौदामिन्याः कनक कमनीयं विलसितं ।
मुदं च म्लानिं च प्रथयति पथिष्वेव सुदृशाम्॥

(भाषा टी०) ऐसे घने अन्धकारमें जिसमें सुई न प्रवेशकरसके जो आषाढ वा श्रावनके मासमें बड़े मेघके शब्द और पत्थर सहित जलवृष्टिमें बिजुली का बारबार चमकना सो स्त्रियोंको अपनेर बटोही पतियों के प्रति सुख दुःख उदयक्त करता है ॥ ४५ ॥

आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुंबहिः शक्यते ।
शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशागाढंसमालिंग्यते ॥
जाताःशीतलशीकराश्चमरुतो वान्त्यन्तखेदच्छिदो ।
धन्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासंगमे ॥

(भा० टी०) वर्षाकी झड़ी में स्त्रीलोग घरके बाहर नहीं निकल सक्ती हैं और स्त्री प्रीतमसे आलिंगन किये जाती हैं कि बड़ा जाड़ा लगता और देह कांपती है यों कह कह इसी निमित्त स्त्रियों से प्रीतमकी आलिंगन

करते जाते हैं और बाहर नहीं निकल सक्ते औ
ठंडे २ जलसे सूक्ष्म कणा सहित वायु मैथुन के अ
में श्रम हरने वाला वहरहा है ऐसे धन्य पुरुषों
प्यारी के संगमें दुर्दिन भी सुदिन होजाते है अर्था
सुखकी घडी हो जाती हैं ॥ ४६ ॥

अथ शरत्

अर्द्धं नित्वानिशायाःसरभससुरतायासखिन्नश्लथांगः
प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते
संभोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलताऽर्जितंकर्करीतो
ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारंपिबतिनसलिलंशारदंमंदभाग्य

(भा० टीका) आधी रात व्यतीत भये पर वे
सहित मैथुन के श्रमसे जिसके अंग थाकित, होरहे है
मद्यमें मत्त अत्यंत प्यासा छतपर स्वच्छ और एकान्त
ठौर में बैठा, वैसे ही मैथुनमें थकी स्त्रीने शिथिल भुजा
ओं से झारी लाकर दी और चांदनी में जिसकी स्वच्छ
धारा दीख पडती है ऐसे शरदऋतुके जलको न पीवे
तो मन्दभागी जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवासोभृतः ।
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषः खिन्ना विचित्रै रतैः ॥

ःस्थलकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरं ।
द्वदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते ॥
भा० टीका) यहाँ, दूध, घृत, और सुगन्धित
दान भोजन किये,केशर कस्तूरी सघन सर्वांग लगाए
नेक प्रकार के आसन भेदकी रतिसे खिन्न, पुष्ट जंघा
र स्तनवाली स्त्रियां जिन्हें लपटाये पान औ सुपारी
ाये, मञ्जीठ के रंगे वस्त्रधारण किये प्यारी के साथ
न्य पुरुषही हेमंतऋतु में सोते हैं ॥ ४८ ॥
चुंबन्तो गंडभित्तीरलकवति मुखेसीत्कृतान्यादधाना
वक्षःसूत्कंचुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ॥
ऊरूनाकंपयंतः पृथुजघनतटात्स्रंसयंतोंशुकानि ।
व्यक्तंकांताजनानांविटचरितकृतःशैशिरावांति वाताः॥
(भा० टी०) यह प्रकार है कि शिशिर ऋतु में
ामियोंके समान आचरण करतेहुए पवन चलते हैं कि
स्त्रियों के कपोलों को चुंबन करते हैं केशों वाले मुख में
सीत्कार शब्द को कराते हैं कंचुकी नहीं जिस पर ऐसी
छाती स्तनोंपर रोमावली को पैदा करते हैं जंघाओं को
कंपाते हैं और मोटी जंघाओं के (रान) वस्त्रों को
उड़ाते हैं ॥ ४६ ॥
केशानाकलयन्दृशो मुकुलयन्वासोवलादाक्षिप- ।

ज्ञातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकट यन्नालिंग्य कम्पञ्चनैः॥
वारंवारमुदारसीत्कृतकृतोदन्तच्छदान्पीडय- ।
न्प्रायःशैशिर एष संप्रति मरुत्कांतासु कांतायते॥

(भा० टी०) बालों को बिखेरता, आंखों के किञ्चित् २ मूंदता, साडी बलात्कार से उडाता, देह में रोमांचित करता, चलने में उद्वेग और कम्प प्रकट करता बेर बेर सीसी करने में ओठों को पीडित करता इस प्रकारका शिशिरऋतुका वायु पतिका सा आचरण करता है ॥ ५० ॥

असाराः सन्त्वेते विरतिविरसायास विषया ।
जुगुप्सन्तां यद्वाननुसकलदोषास्पदमिति ॥
तथाप्यन्तरतन्त्वे प्रणिहितधियामप्यनिबलस्तदा ।
योऽनाल्येयः स्फुरतिहृदयेकोऽपि महिमा ॥

(भा० टी०) यह सब भोग विषय असार और वैराग्य में विरस करनेवाले हों और उन्हें सब दोषों का गृह समझकर यदि लोग निंदामी करें तोभी इन विषयोंकी महिमा अति बलवान् है कि कहने के योग्य नहीं, अंतस्तत्व अर्थात् ब्रह्म विचार में जिनकी बुद्धि स्थिर हो रहींह उनके हृदयमें भी प्रकाशित होतीहै ५१

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामामगुरवो ।

विदग्धालापानां वयमपि कवीनाम नुचराः ॥
प्येतद्ब्रूमो नहि परहितात्पुण्यमधिकंन ।
चास्मिन् संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥
(मा० टी०) तुम वेदांत वेत्ताओं के मंत्र गुरु
त् शिक्षकहो और हमभी विचित्र काव्य शास्त्र
दी कवियों के दास हैं तथापि यह हम ठीक
दन कहते हैं कि इस संसार में पराया हित करनेसे
धिक अन्य पुण्य नहीं और कमलनैनी स्त्रियों से
धिक सुन्दर वस्तु नहीं ॥ ५२ ॥
किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यः प्रलापै- ।
र्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ॥
अभिनवमदलीलालालस सुन्दरीणां ।
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा ॥
(मा० टी०) युक्तिशून्य प्रलाप अर्थात् बकवाद से
या प्रयोजन है ! पुरुषों को दोही वस्तु सर्वदा सेवने
योग्य हैं ! का नवीन मदांध लीला के अभिलाषी और
स्तनभार से खिन्न ऐसे सुन्दरियों का यौवन अथवा
न ॥ ५३ ॥
सत्यंजना वच्मि न पक्षपाताल्लो- ।
केषु सर्वेषु च तथ्यमेतत् ॥

नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो ।
दुःखैकहेतुर्न च कश्चि दन्यः ॥

(भा० टी०) हे लोगो यह हम सत्य कहते हैं कुछभी पक्षपात नहीं करते संसार में यह विदित है स्त्रियोंसे अन्य मनहरण करनेवाली और दुखदाई वस्तु भी नहीं है ॥ ५४ ॥

अथ दुर्विरक्त प्रशंसा ।

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेक दीप यावदेव न कुरंगचक्षुषांताड्यते चपललोचनाञ्चलैः

(भा० टीका) विवेकियों को भी निर्मल विवेक दीपक तभी तक प्रकाशित रहता है जबतक मृगनयनी स्त्रियों के चंचल लोचन रूपी आंचल से नहीं बुझा जाता ॥ ५५ ॥

वचसि भवति संगत्यागमुद्दिश्य वार्त्ता ।
श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम् ॥
जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापं ।
कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ॥

(भा० टीका) संग त्याग करनेकी कथा शास्त्रज्ञ पंडितोंके मुखसे केवल कथनमात्रही है नहीं तो लाल

लजडित करधनी वालो कमलनयनी स्त्रियों के जघन
पल छोडनेमें कौन समर्थ है ॥ ५६ ॥

वपरमतारकोऽसौ निन्दति योलीक पण्डितो युवतीः
रस्मात्तपसोऽपिफलंस्वर्गस्तस्यापिफलंतथाप्सरसः ॥

(भाषा टी०) जो स्त्रियों की निंदा करता है वह
झूठा पंडित है आप तो ठगाही गया पर औरों को भी
ठगाता है क्योंकि तपस्याका फल स्वर्ग और स्वर्गका
फल अप्सरा भोग है सो यह प्राप्त है ॥ ५७ ॥

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः ।
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥
किं तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य ।
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥

(भा० टी०) उन्मत्त हाथीके मस्तक विदारने वाले
शूर इस पृथ्वी पर अनेक हैं और प्रचंड सिंहके मारनेमें
दक्ष योधाभी कितनेही हैं परन्तु बलवानों के आगे हम
हठकर यह कहते हैं कि कामदेवके मदका दलनेवाला
कोई विरलाही पुरुष होगा ॥ ५८ ॥

सन्मार्गेतावदास्तेप्रभवति स नरस्ताव देवेन्द्रियाणां ।
लज्जांतावद्विधत्ते विनयमपिसमालम्बते तावदेव ॥
भ्रूचापाकृष्ट मुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते ।

यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति

भा० टी०—पुरुष सत्मार्ग में तभी तक रहता
इन्द्रियों को उसी समय तक वशमें रख सक्ता है औ
लज्जा विनयभी उसी कालतक रहतेहैं जब तक श्या
वरौनी पलखरूपी पंख धारण किये, भौंरूपी धनुष न खे
कानोंतक फैले धैर्य छुडानेवाले लीलावती सुंदर स्त्रि
के नयनरूपी बाण छुटकर हृदयमें नहीं लगते ॥ ५९

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्तेयदंगनाः ।
तत्र प्रत्यूहमाधातु ब्रह्मापिखलु कातरः ॥

(भा० टी०) अति प्रेमके उमंगमे उन्मत्त हो
स्त्री लोग जिस कामका आरम्भ करदेती हैं उस का
के रोकनेकी ब्रह्माको भी शक्ति नहीं ॥ ६० ॥

[illegible] कुलीनत्वं विवेकिता ।
[illegible] नाङ्गेषु [illegible] ॥

(भा० टी०) [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ६१ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible] ।

ामाक्षीणां भवति कुटिलभ्रूलताकुञ्चिकेव ॥

(भा० टीका) शास्त्रज्ञ और विनयपूर्वक प्रसिद्ध और ज्ञानी हो परन्तु इस संसारमें दृढता से सद्गति का पात्र कोई विरलाही पुरुष होता है इस हेतु यहां नर्क नगरके द्वारके तालेको सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियोंकी टेढी भौंह लता पूमती कुंजीके समान खोलती है ॥ ६२ ॥

कृशःकाणः खंजः श्रवणरहितः पच्छ विकलो ।
व्रणीपूयाक्लिनः कृमिकुलशतै रावृततनुः ॥
क्षुधाक्षामोजीर्णोऽपि करककपालार्पितगलः ।
शुनीमन्वेति श्वाहतमपि निहन्त्येव मदनः ॥

(भा० टी०) दुर्बल, काना, लंगडा, बहिरा, पूंछ से हीन जिसके घावोंमें राध भरीहो और शरीर पर कीडे फिरते हो भूखमे थका वृद्ध मिट्टीके घरेका कण्ठ जिस के गलेमें हो ऐसाभी श्वान कुत्तीके पीछे भोग के लिये जाता है इससे यह सिद्ध हुआ कि कामदेव मरे को भी मारता है ॥ ६३ ॥

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य जननीं सर्वार्थ सम्पत्करीं ।
येमूढाःप्रविहायांतिकुधियोमिथ्याफलान्वेषिणः ॥
तेतेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः ।
केचित्पञ्च शिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥

(भा० टी०) स्त्रियां कामदेवकी मुद्रा सब और संपदकी करनेवाली हैं जो मूढ कुबुद्धि इन्हें छोड स्वर्गादि की इच्छा से निकल भागता है उन्हें विरक्तके वेषमें न समझो किन्तु कामदेवने दया त्यागि दण्ड देकर उन्हें नंगा किया, सिर मुंडवाया, किसी के पांच चोटी जुटा रखवाई, हाथ में ठीकरा दे भीख मंगवाया ॥ ६४ ॥

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरं ॥

(भा० टीका) विश्वामित्र पाराशर इत्यादि बडे बडे ऋषी जो वायु जल और पत्ते खायपीके रहजातेथे वेभी स्त्री मुख कमलको देख मोहको प्राप्त हुए अब जो मनुष्य अन्न घी दूध दही इत्यादि अच्छे अच्छे अन भोजन करते हैं उनकी इंद्रियां जो वशमें होजांय तो समुद्रमें विन्ध्याचलके तैरनेमें क्या आश्चर्य है अर्थात् इंद्रियोंको वशमें नहीं करसक्ते हैं ॥ ६५ ॥

॥ इति दुर्विक्तप्रशंसा समाप्ता ॥

संसारेस्मिन्नसारे कुनृपति भुवनद्वारं सेवावलम्ब ।
व्यासंगव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदध्युः ॥
यद्येताः प्रोद्यदिंदुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः
प्रेंखत्कांचीकलापाःस्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः

(भा० टीका) उदित चंद्रमाकीसी कांतवाली कमल नेत्रवाली हिलती हुई कारधनीकी लरियोंवाली और स्तन भारसे झुकी कटिवाली युवती स्त्री यदि नहो अर्थात् इनसे स्नेह न होय तो इस असार संसारमें निर्मल बुद्धि वाले मनुष्य खोटे राजों के द्वारकी सेवा नाना भांतिके कलंकसे अधीरचित्त होकर क्यों करें ॥ ६६ ॥

सिद्धाध्यासितकन्दरे हरवृषस्कन्धावगाढद्रुमे ।
गंगाधौतशिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि ॥
कः कुर्वीत शिरः प्रणाममलिनं म्लानं मनस्वी जनो ।
यद्यत्रस्तकुरङ्गशावनयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः ॥

(भा० टी०) सिद्धलोग जिस कंदरामें बैठे हैं और महादेवजी का बैल जहां वृक्षोंमें कंधा रगड़ता फिरताहै और गंगाजल से जहां के पाषाण धोये जाते हैं ऐसा हिमालय का स्थान कल्याणदायक छोड़कर कौन मनुष्य स्त्री पुरुष लोगोंके समीप जाकर माथा झुकाय प्रणाम कर अपने मानको मलीन करता यदि भाव रहित

हरिण शावक नयना कामास्त्र स्वरूप कामिनी प्राणे
होता ॥ ६७ ॥

संसार तव निस्तारपदवी न दवीयसी ।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रेमदिरेक्षणाः ॥

(भा० टी०) हे संसार तुझसे पार होना कुछ दु
न था यदि अच्छे नेत्रवाली कठिन स्त्रियां बीचमें
न होतीं ॥ ६८ ॥

अथ यौवन प्रशंसा ।

राजंस्तृष्णाम्बुराशेर्नहि जगति गतः कश्चिदेवाव
सानं । को वार्थोऽर्थैःप्रभूतैः स्ववपुषि गलिते
यौवने सानुरागे ॥ गच्छामःसद्म तावद्विकसित
कुमुदेन्दीवरालोकिनीनां यावच्चाक्रम्यरूपं झटिति
न जरयालुप्यते प्रेयसीनां ॥ ६९ ॥

(भा टी०) हे महाराज ! इस तृष्णारूपी समु
के कोई पार न गया और अब हमारी अनुराग भरी
युवा अवस्था देहही में जीर्ण होगई तब अधिक द्रव्य
संच करके हमको क्या करना है तो शीघ्रही अपने घ
चलें जब ऐसा न हो कि विकसितकुमुद और कम
से नेत्रवाली हमारी प्यारियों का रूप वृद्धावस्था

बिगाड़ न डाले यहां कुमुद रात्रि विकाशी और कमल दिन विकाशी में अभिप्राय है इससे यह सूचना होती है कि वे रात दिन हमारा मारग देखतीं होंगी ॥६९॥

इति स्त्रीणां परित्यागविधिः ॥

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःख संप्राप्तिहेतु- ।
र्मोहस्योत्पत्तिबीजं जलधर पटलं ज्ञानताराधिपस्य ॥
कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टदोषप्रबन्धं ।
लोकेऽस्मिन्नह्यनर्थं निजकुलदहनं यौवनादन्यदस्ति ॥

(भा० टी०) अनुरागका घर, सैकड़ों नरकोंके दुःख प्राप्त होनेका हेतु, मोहकी उत्पत्तिका बीज, ज्ञानरूपी चंद्रमाके ढांकने का मेघ, कामदेवका एकही मित्र, अनेक दोषों का प्रगट करने वाला, और वैराग्य और नीति का हरण करनेवाला, इस लोकमें युवा अवस्था के अतिरिक्त (भिन्न) दूसरा कोई अनर्थ नहीं ॥ ७० ॥

शृंगारद्रुमनीरदे प्रचुरतः क्रीडारसस्रोतसि ।
प्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरतामुक्ताफलोदन्वति ॥
तन्वीनेत्रचकोरपारण विधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ ।
धन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे यौवने॥

(भाषा टी०) शृङ्गाररूपी वृक्षोंका सींचनेहारा मेघ,

निस्तीर्ण कीआरतका मोना, कामदेवका त्याग ॐ
कुमनाहरि मंगिनीका मनुष, स्त्रियों के नेत्रकी ?
का पूर्णचन्द्र और सौभाग्य लक्ष्मीका एकत्र ?
हुआ अवस्था पाकर जो पुरुष त्यागते नहीं वह ?
सा धन्य है ॥ ७१ ॥

अथ कामिनीगर्हणप्रशंसा।

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुल श्रोणी भरेत्युन्नत।
पीनोत्तुङ्गपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूरिति ॥
दृष्ट्वा माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति जानन्नपि।
प्रत्यक्षाशुचिपुत्रिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितं ॥

(भा० टी०) कांता, कमलनयनी, बड़े नितंब वाली, पुष्ट और उत्तुंग ऊंचे स्तनवाली सुन्दर कमल मुखी और सुन्दर भौंहवाली, यों कह कह पंडित लोग भी स्तुति करते हैं और देखके मोहित होते हैं आनन्द पाते रमण करते और उत्कण्ठित होते हैं प्रत्यक्षही अपवित्रताकी पुतली रूप स्त्री है उसपर देखो यह मोह की क्या खोटी चेष्टा है ॥ ७२ ॥

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादवर्द्धिनी।
स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम्॥

(भा० टी०) जो स्मरण से सन्ताप देती है देखनेमें उन्माद बढाती अर्थात् मदवाला करदेती है और स्पर्श मोहित करलेती है ऐसी स्त्रियों को प्रिया क्यों कहते ॥ ७३ ॥

तावदेवामृतमयीयावल्लोचनगोचरा ।
चक्षुःपथादपगता विषादप्यतिरिच्यते ॥

(भा० टी०) स्त्री तभी लों अमृतमयहै जबलों नेत्र के सामने है नेत्रसे जब दूर हुई तब विषसेभी अधिक होजाती है अर्थात् विरहसे सन्ताप देती है ॥ ७४ ॥

नामृतं न विषं किंचिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।
सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥ ७५ ॥

(भाषा टी०) स्त्रियोंसे परे न कोई अमृत है न विष यदि वह प्रीति करै तो अमी लता है और प्रीति तोड बैठे से विषकी मंजरी है ॥ ७५ ॥

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां ।
दोषाणांसन्निधानं कपट शतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ॥
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमाया करण्डं ।
स्त्रीयन्त्रंकेन सृष्टंविषममृतमयंप्राणिनां मोहपाशः ॥

(भा० टीका) संशयोंका भँवर अविनयका घर साहस का नगर दोषोंका पात्र. अविश्वास और सैकडों कपट

का खेत स्वर्गद्वारका विघ्नकारक नरकनगर का मायाका पेटारा अमृतलपेटा विष और प्राणियों फंसाने का फंदा ऐसा स्त्री रूपी यंत्र किसने वा सृजा है ॥ ७६ ॥

सत्यत्वेन शशांक एष वदनीभूतो नवेन्दीवर।
द्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैरप्यङ्गयष्टिः कृता॥
किन्त्वेकंक विभिः प्रतारितमनस्तत्त्वं विजानन्नपि।
त्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मंदो जनः सेवते।

(भा० टी०) देखो तो सच चन्द्रमाही मुख नहीं बन गया कमलही दोनों नेत्र नहीं हुए स्वर्णही से देह नहीं बना है यह स्त्रियों का शरीर चाम मांस और हाडमय है परन्तु यह बात जानकर भी कवियों के बहकाने से अर्थात् विवेक रहित मनुष्य उसे सेवन करते हैं ॥ ७७ ॥

लीलावतीनां सहजा विलासा ।
स्तएव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति ॥
रागो नलिन्याहि निसर्गसिद्ध ।
स्तत्र भ्रमत्येव मुदा षडंघ्रिः ॥ ७८ ॥

(भा० टीका) लीलावती स्त्रियों का लीला करना सहज स्वभाव है सोई मूर्खोके हृदय में वशीकरन हो

हैं जैसे कमलिनी में ललाई स्वभाविक होती है
उसपर व्यर्थही आसक्त होकर घूमता है अर्थात्
मुझता है कि मेरेही लिये ललाई चमकाय
है ॥ ७८ ॥

दितपूर्णेन्दुद्युति हरदुदाराकृति वरं।
मुखाब्जं तन्वग्याः किल वसति तत्राधरमधु॥
इदं तावत्पाकद्रुमफलमिवातीव विरसं।
व्यतीतेऽस्मिन्काले विषमिवभविष्यत्सुखदं ॥

भा० टी०—पूर्णमासी के चन्द्रमाकी छवि हरनहार
सुन्दर आकारवाली स्त्रियोंका मुखकमल जिसमें अधरा
मृत रहता है वह अज्ञात या ... अवस्थामें अच्छा
लगता है फिर वह काल व्यतीत होने पर ज्ञात वा
वृद्धापन प्राप्त होनेसे मदारके फल और विषसा बुरा
होगा ॥ ७९ ॥

उन्मीलत्त्रिवलीतरंगनिलया प्रोत्तुंग पीनस्तन
द्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाक मिथुनावक्त्राम्बुजोद्भासिनी ॥
कान्ताकारधरानदीयमभितः क्रूराशया नेष्यते।
संसारार्णवमज्जन यदितती दूरेणसं... ...म् ॥

(भा० टी०) शोभित पेट ... तरंग व
... है उत्तुंग और पुष्ट ... उसमें चक

के जोडे हैं जिसका गंभीर आशयो मुखरूपी कमल से शोभित है ऐसी स्त्री का आकार धारण किये नदी है सो हे पुरुषो ! जो तुम संसार समुद्र में न मग्न हुआ चाहो तो इसे दूरही से परित्याग करो इसका यह तात्पर्य्य है कि नदीमें गिरी वस्तु घूम फिरके समुद्र में जा पडती है ॥ ८० ॥

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ॥
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ॥

(भा० टी०) बातें तो किसी अन्य पुरुष से करती हैं और विलास सहित औरही की ओर देखती हैं और हृदयमें औरही से मिळनेकी चाह रखती हैं फिर कहो तो इनमें से कौन स्त्रियों का प्यारा है सो नहीं जान पडता ॥ ८१ ॥

मधुतिष्ठतिवाचियोषितां हृदिहालाहलमेव केवलं ।
अतएव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताडयते ॥

(भा० टीका) स्त्रियोंके अधरमें अमृत और छातियों में विष रहता है इसी हेतु लोग अधरपान करतेहैं और छातीमें मुष्टिका प्रहार करते हैं ॥ ८२ ॥

अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षशिखानला ।
त्प्रकृति विषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः ॥

फणिना दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमोषधैः ।
श्चतुरवनिता भोगिग्रस्तं त्यजन्तिहि मंत्रिणः॥

(भा० टी०) हे मित्र ! मदजकी क्रूर और विलास विषाग्निने दूर भाग क्योंकि अन्य सर्पों का डसा औषधोंसे अच्छा होसक्ता है पर चतुर स्त्रीरूपी सर्प डसे हुयेको मन्त्रतन्त्र वाले भी छोड भागतेहैं ॥८३

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण ।
स्त्री संज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ ॥
येनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्यं ।
मत्स्यान् विकृष्य पचतात्यनुरागवह्नौ ॥

(भा० टी०) इस संसाररूपी समुद्रमें कामदेवरूपी केवट ने स्त्री रूपी जालको इसलिये फैलाया है कि वह कामदेव मनुष्यरूपी मच्छ उसके अधरमांसके जो लोभी हैं उन्हें वशमें कर अनुरागरूपी अग्निमें पकाता है ॥८४

कामिनीकायकान्तारेकुचपर्वतदुर्गमे ।
मा संचर मनःपान्थ तत्रास्ते स्मरतस्करः ॥

(भा० टी०) स्त्रियोंका शरीररूपी वन जो कुचरूपी पर्वतोंसे अति दुर्गम होरहा है उसमें हे बटोही मन तू मत जा तहां कामदेवरूपी चोर रहता है ॥ ८५ ॥

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेजस्विना भोगिना ।

नीलाब्जद्युतिनाहिना वरमहं दष्टो न तच्चक्षुषा ॥
दष्टे संति चिकित्सका दिशि दिशि प्रायेणधर्मार्थिनो
मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य मे वैद्यो न चाप्यौषधम् ॥

(भा० टी०) बड़ा लम्बा चञ्चल टेढ़ा चालवाला और तेजवाला फणधारी नीलकमलसा काला सर्प जो मनुष्यको काट ले तो अच्छा परन्तु स्त्रीके कटाक्ष का काटा अच्छा नहीं क्योंकि सांपके डसे को बचानेवाले सब देशमें बसते हैं प्रायः धर्मार्थीभी होते हैं पर अच्छे नेत्र वाली स्त्रीकी दृष्टि से काटे हुये को न कोई मन्त्रही है न औषधि है ॥ ८६ ॥

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं स्फुरति ।
परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम् ॥
इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो ।
ह्यहितकरणदक्षैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽस्मि ॥

(भा० टी०) यह कैसा सुन्दर मधुर गीतहै, रूप देखो कैसा अच्छा है, इस वस्तु का रस कैसा स्वादिष्टहै इस वस्तु की कैसी अच्छी सुगंधि है, स्त्रीके स्तनों का स्पर्श क्या अच्छा सुख देता है इस भांति पर लोकको नष्ट करनेवाली और अपने प्रयाजन साधने में आनि.

र्ते है इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों से हे नर! तू हेर फेर
र ठगाहि गया ॥ ८७ ॥

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्य विषयो।
चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः॥
भ्रमावेशा दङ्गे किमपि विदधद्भव्यमसमं।
स्मरोऽपस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयतिच॥

(भा० टीका) यह कामदेव रूपी अपस्मार (मृगी) रोग भ्रमके आवेश से बडा दुःखदाई शरीरको तोडता और मनको भ्रमाता नेत्रोंको घुमाता है और इस रोग में मन्त्रों की गति नहीं औषधी भी नहीं काम करती अनेक प्रकार की शांति अर्थात् पाठ पूजादि से भी नाश नहीं होता ॥ ८८ ॥

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जरा जीर्णा खिलाङ्गाय च
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च॥
यच्छन्तीषु मनोहरंनिजवपुर्लक्ष्मीलव श्रद्धया।
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येत कः॥

(भा० टी०) जन्माध कुरूप बुढापनसे शिथिलांग गंवार नीच जाति और टपकते कोढसे भरे पुरुषोंकोभी अपनी सुन्दर देह थोडे धनकी आशासे समर्पण करती है ऐसी वेश्या विवेक रूपी कल्पलताको छुरीसी हैं उन

से हैन बुद्धिमान् रमे ॥ ८९ ॥

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥

(भा० टी०) वेश्या तो कामाग्नि की ज्वाला [illegible] रूपी इन्धन से प्रचण्ड है कामी पुरुष उसीमें अपना [illegible] और धन होम करते हैं ॥ ९० ॥

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ।
चारभटचौरचेटकनटविटनिष्ठीवनशरावम् ॥

॥ इति कामिनीनिगर्हणम् ॥

(भा० टी०) वेश्या का अधरपल्लव यद्यपि मनोहर है [illegible] कौन कुलीन पुरुष चूमे [illegible] [illegible] और भांड के थूकने [illegible] है ॥ ९१ ॥

अथ सुविरक्त प्रशंसा ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

न से भरी दृढ और पुष्ट स्तनवाली जिनके कृशोदर
त्रिवलीलता शोभती है ऐसी स्त्रियोंकी आकृति देख
र जिन पुरुषों के मनमें विकार नहीं उत्पन्न होता वें
न्य हैं ॥ ६२ ॥

बाले लीलामुकुलितममी सुन्दरा दृष्टिपाताः ।
किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते ॥
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते ।
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः ॥

भा० टी०—हे बाले ! लीला से किंचित् विकसित
और सुन्दर कटाक्ष हमपर क्या फेंकती है विश्राम ले ले
हमारे प्रति तेरा यह श्रम व्यर्थ है क्योंकि अब हम कुछ
औरही होगये लडकपन हमारा छूट गया वनमें रहते हैं
मोहभी क्षीण होगया और इस जगत के जालको तृण
समान देखते हैं ॥ ६३ ॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ॥
गतो मोहोऽस्माकं स्मरशरवराणव्यपति ।
करज्वलज्ज्वलाःशान्तास्तदपिनवराकीविरमति

(भा० टी०) इस बाला स्त्री का क्या अभिप्राय है
जो यह कमलदलोंकी प्रभाके तिरस्कार करनेवाले नेत्रों

को मेरी तरफ चलाती है अब हमारा अज्ञान गया कामदेवरूपी भीलके बाणोंसे उठी हुई अग्नि शांति हो तोभी यह मूर्खिणी बाला विरामको प्राप्त नहीं है अर्थात् नेत्रों का फेंकना नहीं छोडती ॥ ९४ ॥

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः श्वेतात पत्रोज्ज्वला ।
लक्ष्मीरित्यनुभूयते स्थिर मिव स्फीते शुभे कर्मणि
विच्छिन्नेनितरामनङ्ग कलहक्रीडात्रुटत्तन्तुकं ।
मुक्ताजालमिव प्रयाति झटिति भ्रश्यद्दिशो दृश्यताम् ॥

(भा० टी०) उज्ज्वल घर अच्छे हावभावयुक्त स्त्रीजन और श्वेत छत्रसहित शोभायमान लक्ष्मी तबहीं स्थिरतासे भोगमें आती है जब पुण्यकी वृद्धि हो और जब पुण्य क्षय होजाता है तब देखो कामदेवकी क्रीडा के कलहमें टूटे हारके मोतियों के समान भ्रष्ट हो कर भोग शीघ्रही देशांतरोंमें लुप्त होजाता है ॥ ९५ ॥

सदा योगाभ्यासव्यसनवशयोरात्ममनसो ।
रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमिनस्तस्य किमु तैः
प्रियाणामालापैरधरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः ।
सनिश्वासामोदैः सकुचकलशाश्लेषसुरतैः ॥

(भा० टीका) जिनके आत्मा और मनकी सदा [illegible]नहीके आननमें निरंतर मित्र॥ ऐसा [illegible]

ऐं प्रिय स्त्रियोंके सम्भाषण, अधरामृत, स्वासों की गन्धसहित, मुखचन्द्र और कुचकलशोंको हृदयसे लगा र सुरतिसे क्या प्रयोजन है ॥ ६६ ॥

हे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदंडझङ्कारितै। रे कोकिल कोमलं कलरवं किं त्वं वृथा वल्गसे ॥ मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं। चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥

(भा० टीका) अरे क्षुद्र कामदेव अपने धनुष के टंकोर शब्द से हमको क्या त्रास देता है अरे कोकिल कोमल मधुर शब्दसे क्या वृथा बोलता है और हे सुंदरी प्रेम और चतुराईसे भरे सुन्दर मधुर चंचल कटाक्ष अब तू मत चला मेरा अस्वादित चंद्रचूड शिवजीके चरण ध्यानरूपी अमृतमें मग्न होरहा है ॥ ६७ ॥

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं।
तदा सर्वं नारीमयमिदमशेषं जगदभूत् ॥
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनदृशां।
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ॥

(भा० टी०) कामदेवरूपी तिमिर रोगसे उत्पन्न अज्ञान जब तक मुझमें था तबतक समस्त जगत् स्त्रीमय दृष्टि पड़ता रहा अब हमने सुन्दर विवेकरूपी अञ्जन

लगाया है तो समदर्शी होगई त्रैलोक्य ब्रह्ममय देखता है ॥ ९८ ॥

वैराग्ये संचरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः ।
शृंगारे रमते कश्चिद्भुवि भेदाः परस्परम् ॥

(भा० टीका) कोई पुरुष वैराग्य में संचार कोई नीतिमें प्रवृत्त रहता और कोई शृंगारमें, यों परस्पर मनुष्योंमें इच्छाका भेद है इसलिये भर्तृहरीजी का तात्पर्य यह है कि तीन प्रकारके मनुष्योंके हेतु शतक निर्माण किये हैं ॥ ९९ ॥

इति सुविरक्तप्रशंसा ।

यदस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्यास्पृहा मनोज्ञेऽपि ।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनःकामः सरोजिन्याः ॥

(भा० टी०) जिस पदार्थ में जिसकी रुचि नहीं होती चाहै वह सुंदरभी हो तो भी उसे उसकी इच्छा नहीं होती क्योंकि रमणीय चंद्रमा में कमोदनी की इच्छा नहीं होती ॥ १०० ॥

॥ इति शृंगारशतकं सटीकं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीः

भर्तृहरि विरचितम्



वैराग्यशतकं सटीकं।

प्रारम्भः ॥

॥ श्रीः ॥

अथ भर्तृहरिकृतम्।

वैराग्यशतकम् ।

श्रीगणेशायनमः ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्त चिन्मात्र मूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे॥

(भा० टी०) दिशा और काल जिसकी मूर्तिका परिच्छेद नहीं कर सके और जो अंत रहित और चैतन्य रूप है और जो अपने ही अनुभवसे जाना जाता है ऐसे शांत और तेजोरूप ब्रह्मको नमस्कार है ॥ १ ॥

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहता श्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥

(भा० टी०) विद्या जाननेवाले लोग तो मत्से

मत्सरही से ग्रसित हैं और धनवान् लोग अपने द्रव्यके गर्वसे किसी गुणीका आदरही नहीं करते और जो हैं सो साधारण अल्पज्ञ हैं इसलिये उनसे कहनेको भी जी नहीं चाहता इन कारणोंसे सुभाषित (उत्तम काव्य) शरीरही में जीर्ण होजाता है अर्थात् कदाचित् संसारमें प्रकट नहीं होता ॥ २ ॥

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं ।
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ॥
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया ।
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥

(भा० टी०) सांसारिक उत्पन्न चरित्रमें हम कुशल नहीं देखते और पुण्यफल स्वर्गादि विचारसे भयदायकही देख पडता है अर्थात् पुण्य क्षय होनेपर वहांसे भी पतन होते हैं और बहुत दिन पर्यन्त पुण्यके समूहसे इसलोक में जो विषयादि संचित किया है वहभी विषयासक्तोंको अन्तसमय दुःखदायकही है ॥ ३ ॥

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो ।
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ॥
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः ।
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मयातृष्णेऽधुनामुञ्च मां ॥

भा० टी०—द्रव्य मिलनेकी आशासे मैंने ठौर भूमि खोदी रसायन सिद्ध होनेके निमित्त पर्वतकी धातुओंको फूंक डाली देशान्तर से धन वा रत्न हेतु समुद्रभी मथडाला और बडे प्रयत्न से राजा भी प्रसन्न किया और मंत्र सिद्ध करने के निमित्त मन लगाकर निरंतर रात्रोंको महा स्मशानमें बैठे जागाकिया परन्तु यथार्थ मुझे एक कौडीभी हाथ न आई अन्तकाल हे तृष्णा अबतो मेरा पिण्ड छोड ॥ ४ ॥

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किंचित्फलं ।
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृतानिष्फला
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकव ।
त्ष्णेदुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥

(भा० टी०) दुर्गम अनेक देशोंमें मैंने भ्रमण किया पर कुछ फल न प्राप्त हुआ यथार्थ जाति और कुलका अभिमान त्याग कर पराई सेवा की सोभी व्यर्थ हुई अपमानसे कौवे के समान संशकित पर घर भोजन भी करता रहा हे तृष्णा दुर्मति और पापकर्म में प्रवृत्त तू अबतक संतोष नहीं पकडती ॥ ५ ॥

खलोल्लापाः सोढा कथमपि तदाराधनपरे ।
निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्ये न मनसा ॥

...रिपस्तम्भः प्रहसितमिवागञ्जलिरपि ।
...मारो मोघाशे किमपरमतो नर्तयसिमाम् ॥

(भा० टीका) खलोंकी सेवा करनेमें हमने तिनके ...ये और कुतर्क वाक्य सहे हृदय नेत्र आंसुओं ...क उनके आगे उदास मनसे हँसा किये और चित्त ...िरकर उन हँसनेवालों के सम्मुख हाथभी जोड़ा ...तृष्णा व्यर्थ आशा करनेवाली इससे अधिक अब ...या नचाती है ॥ ६ ॥

...आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं ।
...व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥
...दृष्ट्वा जन्म जराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते ।
...पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्त भूतं जगत् ॥

(भा० टी०) सूर्यके उदय अस्त होनेसे दिन प्रति ...दिन आयु घटती जातीहै अनेक कार्योंकर भारी व्यापार ...कालका बीतना जाना नहीं जाता और जन्म वृद्धापन ...विपत्ति और मरण देखकेभी त्रास नहीं होता इससे ...यह निश्चित हुआ कि मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा पीके ...जगत् मतवाला हो रहा है ॥ ७ ॥

...दीना दीनमुखैःसदैवशिशुकै राकृष्टजीर्णाम्बरा ।
...क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद्गेहिनी ॥

याञ्चा भङ्गभयेन गद्गदलसत्त्रुट्यद्विलीनाक्षर ।
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थेमनस्वीजनः ॥

(भा० टीका) दीनों से भी दीन है मुख ...
ऐसे बालक जिस स्त्री के फटे वस्त्रोंको खींचते हों ...
अन्न के लिये रोतेहुए गृहके इतरमनुष्यों से जो ...
हों ऐसी घरवाली (पत्नी) न होय तो ऐसा कौन ...
मनुष्य है जो केवल अपने उदर भरने के लिये ...
(मांगना) के भंग (नाहीं) के डरसे गद्गद ...
से टूटे फूटे अक्षरोंवाली देहि इस वाणीको कहै ...
स्त्रीही सब कहवाती है और पूरा बंधन है ॥ ...

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः ।
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ॥
शनैर्यष्ट्योत्थानं घन तिमिररुद्धे च नयने ।
अहोधृष्टःकायस्तदपि मरणापायचकितः ॥

(भा० टी०) विषयभोग की इच्छा न्यून हुई, लो...
अपना मानभी घटा, बराबरी वाले भी मरगये, ...
इष्ट मित्रभी वेभी समाप्त होनेवाले हैं अथवा अपने स...
हैं आपभी लकड़ी टेककर उठने लगे और आंखों...
अंधेरी आई तोभी यह काया ऐसी निर्लज्ज है कि म...
मरण सुन चकित होजाती है ॥ ६ ॥

साशन्य मयत्नलभ्य मशनं धात्रा मरुत्कल्पितं ।
यालानां पशवस्तृणांकुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ।
संसारार्णवलं घनक्षमधियां वृत्तिः कृतासा ।
तृणांवामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ।
(भा० टी०) विधाता ने हिंसा रहित बिना प्रयत्न बैठे वायु भोजन सर्पों के लिये जीविका बनाई और पशु ऐसे बनाये जो तृणों को खाते हैं और भूमि पर सोते हैं और जिनकी बुद्धि संसार रूपी समुद्र लांघने को समर्थ है उन मनुष्यों की वृत्ति ऐसी बनाई कि जिसके खोज में सब गुण समाप्त होजायँ पर वह न सिद्धि होय ॥ १० ॥

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसार विच्छित्तये ।
स्वर्गद्वारकपाटपाटन पटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥
नारीपीनपयोधरोरुयुगुलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं मातुः ।
केवल मेव यौवनवनच्छेदे कुठारावयम् ॥ ११ ॥
(भा० टी०) संसार छेदने के लिये ईश्वर के चरण कमलों का विधिवत ध्यान न किया स्वर्गद्वार खुलने के लिये कोई निपुण धर्म भी संचय न किया और नारी के पुष्टपयोधर और दोनों जंघा स्वप्न में भी छाती से न लगाये केवल हम माता के यौवनरूपी बन काटने के हेतु कुल्हाड़े ही उत्पन्न हुये ॥ ११ ॥

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता- ।
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥
कालो न यातो वयमेव याता ।
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥

(भा० टीका) विषयों को हमने नहीं भोगा
विषयों ने हमारा ही भुगतान कर दिया, हमने
तपे पर तपही ने हमें तपा डाला, काळव्यतीत
और वयश हमारी बीत गई और तृष्णा पुरानी
और हम पुराने होगये ॥ १२ ॥

क्षान्तं न क्षमया ग्रहोचितसुखं त्यक्तं न संतोष
सोढा दुःसहशीतवाततपनाक्लेशान्न तप्तं तपः
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभो पद
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचित

(भा० टी०) क्षमा तो हमने की परन्तु धर्म
धार के न की अर्थात् अशक्तता से की, ग्रहसुख
छोडा परन्तु संतोष पकड के न छोडा, शीतोष्ण
का दुःसहदुःख सहा पर तप न किया, धनका ध्यान
रते रहे परन्तु संयम से कल्याण दाता शिवके च
ध्याये हमने ये कर्म किये जिनको विचारवाले मुनि
पंचक ठग कहा है ॥ १३ ॥

...रुगाक्रान्तं पलितैनाङ्कितं शिरः ॥
... शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥ १४ ॥
... टी०) मुंहके घमडे सिकुड गये सिरके बाल
...होगये और सब अंग शिथिल होगये पर एक तृ-
... तरुण होती जाती है ॥ १४ ॥
...म्बरखंडेन संवीतो निशिचंद्रमाः ।
... च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥ १५ ॥
(भा० टी०) जिस आकाश के खण्डको ओढकर
...त्रि को चन्द्रमा व्यतीत करता है उसी को ओढकर
...दिन को सूर्य व्यतीत करता है देखो यह दोनों इस
...भ्रमण में ऐसी दुर्दशाको प्राप्त होते हैं पर कुछ फलभी
नहीं प्राप्त करते ॥ १५ ॥

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया ।
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः ।
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥

(भा० टी०) बहुकालपर्यन्त भोग किये हुये विषय अन्त में अवश्य छूटेंगे फिर उनके वियोग होने में क्या संशय रहा जिसे यह मनुष्य पहिले आपही क्यों न त्याग दे क्योंकि जब वे आपसे छोडेंगे तो मनको बडा संताप

वेंगे और जो आप छोड़ देगा तो महा सुख से
होगा ॥ १६ ॥

तृष्णाधिकारमाह ।

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा ।
परिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः ॥
जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपण- ।
स्तृपापात्रं यस्य भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥१७

भा० टी०—जब विवेक के प्रकाश से शांति
होता है तब तृष्णा भी शांत होजाती है और उं
पन के संसर्गसे वही तृष्णा ऐसी फैल जाती है जि
होते जरा से जीर्ण ऐश्वर्यके कठोर त्यागनेमें इन्द्र भी
मर्थ होता है अर्थात महान् पदवी वाला इन्द्र भी
को नहीं त्याग सका ॥ १७ ॥

मदनविडंबनमाह ।

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो ।
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ॥
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालार्पितगलः ।
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥१८

(भा० टी०) दुबला काना लंगड़ा बहरा बिना

कटे हैं और घाव हो रहा पीव बहती देह में कीड़े
हैं भूखा बूढा।जिसके फूटी हांडीका घेरा गलेमें फँस
। है ऐसा कुत्ता भी कुत्तियों के पीछे संगम करने को
ला जाता है तो देखो मृतक को भी कामदेव मारता
सारांश यह कि हृष्ट पुष्ट देहधारी फिर काम से कैसे
बचेंगे ॥ १८ ॥

विषयाणामधिकारमाह ।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं ।
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीन कन्था ।
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥१६॥

(भा० टी०) निरस अन्न एक ही बेर भीख मांग के खाते हैं भूमि ही पर सोते हैं कुटुंब भी उनका देह ही मात्र हैपुराने वस्त्र सैकडों टुकडेकी सी गुदडी पहिने ऐसी दशामें प्राप्त हैं तो भी बडा आश्चर्य है कि उन्हे विषय वासना नहीं परित्याग करती ॥१६॥

रूपतिरस्कारमाह ।

स्तनो मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ ।
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं ।
मुहुर्निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥

विनय मनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥२२॥

(भा० टीका) बहुत से फल भोजन के लिये मधुर जल पीने को पृथ्वी सोने को और वृक्षके वकले पहिरने के निमित्त हैं फिर थोडासा धनरूपी मदिरापान वाले जिनकी सब इन्द्रियां घूमती हैं ऐसे दुर्जनोंका निरादर हम क्यों सहें ॥२२॥

मानिनामुद्दिश्याह ।

विपुलहृदयैरीशैरेतज्जगज्जनितं पुरा ।
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ॥
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते ।
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः॥२३॥

(भा० टी०) कोई महात्मा ऐसे भये जिन्होंने जगत् को उत्पन्न किया कोई ऐसे हुए कि जिन्होंने धारण किया कोई ऐसे हुए जिन्होंने इसे जीतकर तुच्छ समझ औरों को दे दिया और कोई ऐसे हैं कि चौदह भुवन को पालते हैं तब यहां देखो कि थोडेसे गांव की ठकुराई पाकर जो अभिमान का ज्वर लोगों को होता है यह क्या ॥ २३ ॥

निःस्पृहाणामभिमानमाह ।

अभुक्तं राज्ञा ... [illegible]

ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नो
इत्थं मानदनातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं ।
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः

(भा० टी०) तू राजा है तो मैं भी गुरुकी .. से बुद्धिमान हो उच्चपदको प्राप्त हुआ हूं तू यदि धन से प्रसिद्ध है तो हमारी विद्या का यश कविलोग देशान्तरों में वर्णन कर रहे हैं फिर तू हम से मुख फेरता है तो हम तुम से अधिक निःस्पृह हैं ॥२४॥

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै ।
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभुजाम् ॥
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो ।
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडः प्रत्युत मुदम् ॥

(भा० टीका) सैकड़ों राजा इस पृथ्वीको अनेक मान चलेगए पर उनसे यह भोगी न गई तो इसके लाभ होनेसे राजाओं को क्या अभिमान करना चाहिये अब तो उसके टुकड़े का टुकड़ा फिर तिसका टुकड़ा उसमेंभी न्यून अंश पाके अपने को भूपति मानते हैं जो बात सोच करने के योग्य है उसमें मूर्खोंको देखो उलटे आनन्दही मानते हैं यह आश्चर्य है ॥२५॥

इक्षिप्यते नटस्येव वस्त्रपितः शतांऽप्यप न तत्रु ।

अङ्गीकृत्य स एव संयुगशते राज्ञां गणैर्भुज्यते ॥
इयद्दद्तेऽथवा न किमपिक्षुद्रा दरिद्रा भृशं ।
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणंवाञ्छतितेभ्योऽपिये

(भा० टी०) यह भूमि एक मिट्टी का लौंदा पानी की रेखा से घिरा हुआ है पहिले आपही यह सम्पूर्ण छोटा सा है तिसे राजा सैकड़ों लड़ाइयां लड़ लड़ कर अपना अपना भाग बांटके किसी प्रकारसे भोगते हैं ऐसे क्षुद्र औ दरिद्र को जो बड़े दानी कहाते हैं अब भी देखें दान करते हैं या नहीं यों कह कह के उनसे धनके कणिका की वाञ्छा करते हैं तिन अधम पुरुषों को धिक्कार है ॥ २६ ॥

दुर्भगसेवकस्य वाक्यमाह ।

न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः ।
नृपसद्मनि नाम केवयं कुचभारानमिता न योषितः ॥

(भा० टी०) न तो हम नट हैं न परस्त्रियोंसे लंपट हैं न गवैये हैं न झूठे लबार हैं और न बड़े२ स्तनवाली स्त्री हैं फिर हमको राजोंके घर कौन पूछता है ॥२७॥

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये गता ।
कालेनासौ विषयसुख सिद्ध्यै विषयिणाम् ॥
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा ।

नहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोधः प्रविशति ॥

(भा० टी०) पहिले जो विद्या पण्डितों के चित्तके क्लेश दूर करने के निमित्त थी फिर कुछ दिन पे वह विषयी लोगों के विषय सुखके सिद्धि होनेके लिये भई अर्थात् विद्यासे राजों को प्रसन्न करके धन आदि ले सुखभोग करना इस काम की हुई इस समयमें राजोंको शास्त्र सुनने से विमुख देखकर प्रतिदिन वह विद्या अधोगतिको प्राप्त होती जाती है यह बडा कष्ट है ॥ २८ ॥

साहंकारं पुरुषमुद्दिश्याह ।

सजातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं ।
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलङ्कारविषये ॥
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना ।
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥

(भा० टी०) पहिले तो ऐसे पुरुष हुए हैं कि उज्ज्वलमस्तककी माला बनाकर तो शिवजीने धारण कि जिससे कंठका भूषण हो अब देखो पोषण करनेवाले थोडेसे मनुष्यों से प्रतिष्ठा अभिमान के ज्वरसे भारी हो रहे हैं ॥ २९ ॥

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामी
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वु...

सेवन्ते त्वां धनाढ्या मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा।
मय्यप्यास्था न ते चेत्त्वयि मम नितरामेव राजन्ननास्था॥

(भा० टीका) तुम धनके कोशके ईश्वर हो तो हम भी विद्या के कोश के ईश्वर हैं तुम युद्ध करने में वीर हो तौ हमभी शास्त्रार्थ करनेवाले वादी प्रतिवादियों के अभिमान का ज्वर तोड़नेमें कुशल हैं तुम्हें बड़े लोग धनान्ध अथवा धन पानेवाले आशाग्रसित सेवन करते हैं सो हमैंभी अपने बुद्धि का अज्ञान दूर करने को शास्त्र सुनने की इच्छावाले सेवते हैं सो हे राजन्! यदि हमारे विषय तुम्हारी श्रद्धा नहीं है तो हमारी भी श्रद्धा तुम में नहीं है सो अब हम जाते हैं॥ ३०॥

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं तदा।
सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः॥
यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं॥
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।

(भा० टी०) जब मैं कुछ थोड़ा सा जानता था तब हाथी के समान मुझे मद था और मेरे मन में [illegible] कि मैं सर्वज्ञ हूं और जब मैं पंडितों के सकाश से कुछ [illegible] जाना तब मैंने जाना कि मैं मूर्ख हूं और [illegible] [illegible] तब वो मेरा मद ज्वर सा दूर॥

निर्ममतास्वरूपमाह ॥

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसुभगो ।
भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ
इदानीं स्वः सिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः ।
सुतारैः फूत्कारैः शिव शिव शिवेति प्रतनुमः

(भा० टी०) भूषण आदिसे शोभित जो स्त्री उनके भोगनेमें सुभग (योग्य) यौवन (समय) तो बीतगया और चिरकाल तक इस संसारके मार्गमें भ्रमते २ हम थकगये अबतो श्रीगंगाजी के तटकी भूमिपर उक्त स्त्रियों की निन्दा करते हुये हम शिव २ यह जप करेंगे ॥३२॥

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने ॥
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः ।
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरतटीकुञ्जे निवासः क्वचित्

(भा० टी०) अब प्रतिष्ठा भंग हुई द्रव्य नाश होगया याचक लोग आय २ विमुख फिर जाने लगे भ्राता और मित्र और सम्बन्धी आदि भ्रष्ट होगये उस समय बुद्धिमान पुरुषों को उचित है कि जिस पर्वत के पाषाण गंगाजल से पवित्र हैं उसकी कन्दरा के समीप कहीं और कुञ्ज में बड़ी निवास करें ॥ ३३ ॥

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा प्रसादं ।
किं नेतुं विशसि हृदय क्लेशकलितम् ॥
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणे ।
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यतिनते ॥

(भा० टी०) हे मन ! तू पराये चित्तमें प्रसन्न करने को क्या प्रसाद लेनेके हेतु क्लेशसे मलीन होता हुआ घुसता है तू सर्व संकल्प अर्थात् तृष्णा छोड़कर अपनेही में प्रसन्न होकर चिन्तामणि कैसे गुण प्रगट करेगा अर्थात् शांति संतोषादि गुण ग्रहण करेगा तो क्या तेरी अभिलाषा पूरी न होगी ॥ ३४ ॥

अथ भोग पद्धतिः ।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्तेनृपालाद्भयं ।
मौने दैन्यभयं वले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वाद भयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवाभयं ॥

भा० टी०—भोग में रोगका भय, कुल बढ़नेमें उसके च्युतका भय, अधिक धन होने से राजभय, मौन होने में दीनता का भय, संग्राम जीतने में शत्रुभय, रूपमें वृद्धावस्थाका भय, शास्त्रसे नाम बढ़नेमें अपमानका

भय, सद्गुण में दुर्जनका भय; और शरीर में मृत्यु का भय, यों सर्वत्र भयकेही स्थान देख पडते हैं केवल वैराग्यही निर्भय ठौर है ॥ ३५ ॥

अमीषां प्राणानां तुलितिबिसिनीपत्र पयसां ।
कृतं किमस्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ।
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिः शंकमनसां ।
कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥

(भा० टीका) जैसे कमल के पत्र पर जलके बुन्द चंचल रहते हैं वैसेही इन चंचल प्राणों के हेतु विवेक त्यागकर हमने क्यों उद्यम न किया क्योंकि जिससे धनके मदसे मदान्ध लोगोंके निकट अपना गुण गान करना यह पाप निर्लज्ज होके किया ॥ ३६ ॥

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च ।
तत्पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उद्रिक्तःसचराजपुत्रनिवहस्तेनन्दिनस्ताःकथा ।
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालायतस्मै नमः ॥

(भा० टी०) पहिले यहां कैसी सुन्दर नगरी थी उसका राजा कैसा उत्तम था और राज्य उसका कैसा दूरतक था उसके निकट सभा कैसी होती थी और चन्द्रमुखी स्त्रियां कैसी शोभायमान थीं और राजाके

पुष्पोंका समूह कैसा प्रदल था कैसे वे बन्दीगण थे और कैसी अच्छीर कथा कहते थे अब वे सब जिस कालके वश होकर लुप्त होगये उस बली कालको नमस्कारहै॥३७

पुनःक्रमनुद्दिश्याह।

यैर्येभ्योजाताश्चिरपरिगताएवखलुते समं यैः।
संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः॥
इदानीमेतेस्मः प्रतिदिवस मासन्नपतनाद्गता-।
स्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥

(भा० टी०) जिनके संग हम जन्मे थे उनको तो गये बहुत दिन बीते फिर जिनके साथ हम बड़े हुए वे भी स्मरण पदमें गये अर्थात् मरे अब हमभी दिन दिन गिरते देख पड़ते हैं बालुका नदी तटके वृक्ष के तुल्य दशाको प्राप्त हो रहे हैं॥ ३८॥

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको।
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चैकः॥
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वाविवाक्षौ।
कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणसारैः

(भा० टी०) जिस घरमें अनेक थे वहां एक दृष्टि पड़ता है और जहां एक था वहां अनेक देखपड़तेहैं फिर एकही रहगया तो देखो रात और दिनके पासे ढुराके

के इस संसार रूपी चौपड में प्राणियोंको गोटी बनाके काल पुरुष अपनी कालरात्रि शक्ति से खेल रहा है३९

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं ।
गुणोदारान् दारानुत परिचरामः सविनयम् ॥
पिवामः शास्त्रौघानुतः विविधकाव्यामृतरसान् ।
विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥

(भा० टी०) तप करते हुए गंगातट पर बसें अथवा गुणवान् स्त्रियों के संग प्रेम सहित विचरें वा वेदान्त शास्त्र समूह और अनेक काव्यामृतरस पियें भावार्थ इस निमेषमात्र आयुष्यवाले देहको देखकर हम नहीं जान सके कि क्या करें ॥ ४० ॥

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य ।
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योग निद्रां गतस्य ॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः ।
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वांगमंगे मदीये ॥

(भा० टी०) जिस समय हम गंगा के तट हिमाचल की शिलापर आसन लगा पद्मासन बांधे बैठेंगे और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास में विधिपूर्वक आंख मूंद योगनिन्द्रा में प्राप्त होंगे, देखें हमारे ऐसे सुदिन कब होते हैं जहां निःशंक हो बूढे २ हरिण हमारे देह में अपना अंग रगड के खुजलाहट मिटावेंगे ॥ ४१ ॥

स्फुरत्स्फार ज्योत्स्ना धवलि ततले क्वापिपुलिने।
सुखासीना शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः॥
भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिवशिवेत्युच्चवचसः।
कदा यास्यामोऽन्तर्गतबहुलबाष्पाकुलदशाम्॥

(भा० टी०) जहां प्रकाशित फैली चांदनी से निर्मल स्थल हैं ऐसे गंगातटमें सुखसे बैठे रहें जब सब ध्वनि मन्द हो तब रात्रिमें शिव ३ आर्त्तस्वरसे कहते हुए संसार के दुःखसे व्याकुल हो और आनन्दके आंसुओं से पूर्ण नेत्र हो रहे हैं ऐसे हम कब होंगे ॥ ४२ ॥

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरि-।
द्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदम दैन्यव्रतमिदं।
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता॥

(भा० टी०) महादेवही एक देव, गंगाही नदी, एक गुहाही घर, दिशाही वस्त्र, कालही मित्र, किसीसे दीन न होना यही व्रत, और कहां तक कहें वटका वृक्षही हमारी वल्लभा हो ॥ ४३ ॥

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं।
महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चापि जलधिम्॥
अधो गंगा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा।
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥

(भा० टी०) जो विवेकसे भ्रष्ट होते हैं उनको
घे पदपर गिरना सैकडों प्रकारसे होताहै देखो यह
गंगा स्वर्गसे तो शिवजी के शिरपर गिरी और शि
हिमाचल पर्वतपर और ऊंचे पर्वत से पृथ्वी पर
पृथ्वी से समुद्र में गिरी ॥ ४४ ॥

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥
मोहावर्त्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी ।
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वरा

(भा० टी०) आशा नाम एक नदी है मनोरथ
जल उसमें भरा है तृष्णारूपी तरंगो से पूर्ण है प्रीति
उसमें मगर है नानाविधि की तर्क की उसमें पक्षी हैं
धैर्यरूपी वृक्षको ढाहनेवाली है मोहरूपी भौंर इसमें
हैं इसमें बडी दुस्तर और कठिन होरही है बडी चिन्ता
की उसके तट हैं उससे पार होकर बडे शुद्धमनवाले
महात्मा योगीश्वर ही आनन्द पाते हैं ॥ ४५ ॥

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ् ।
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रमार्गं गतो वा ॥
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमान ॥
क्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥

टी०) जबसे यह संसार प्रवृत्त हुआ है आज
ाई ! हम त्रिभुवन में ढूंढते फिरते हैं पर ऐसा
ने और सुननेमें न आया जो विषयरूपी हथिनी
हुआ है अत्यन्त अहंकार जिसको ऐसे अन्तः
ली उन्मत्त हाथीको रोककर वशमें रक्खे अर्थात्
में फंसा मन वशमें नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥

सांप्रत निर्वेदतायाः स्वरूपमाह ।

वर्द्धितधनपतिपुरःप्रार्थनादुःखभाजो ये ।
चालत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्त बुद्धेः ॥
चिरामन्तःस्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं ।
ध्यानच्छेदेशिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः ॥

(भा० टी०) जो दिन धनवानों के निकट प्रार्थना
या दुःख सहनेवालों को बढ़ाते हैं और जो विषयों
के मद होनेसे विपरीत बुद्धिवालों को छोटे प्रतीत होते
हैं उन दिनों को हम अन्तःकरण में हँसकर ध्यान से
विश्राम को पाकर पर्वतकी कंदरा में पत्थरकी शय्यारूपी
शय्या पर बैठे हुए स्मरण करेंगे अर्थात् विरक्त
होंगे ॥ ४७ ॥

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं ।
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता ॥

आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेपि नालिङ्गि[illegible]
कालोयं परपिण्डलोलुप तया काकैरिव प्रेरित[illegible]

भा० टी०—निष्कलंक विद्या नहीं पढ़ी [illegible] कमाया एकाग्र चित्त होके माता पिताकी सेवा भी [illegible] और चंचल और बड़े नेत्रवाली स्त्रियों को स्वप्न [illegible] में भी न लगाया पराये ग्रास का लोभ करके कौ[illegible] समान सब समय यों ही बिताया ॥ ४८ ॥

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्ण हृदयाः ।
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामां विधि[illegible]
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणै ।
त्रियामां नेष्यामो हरचरणचिन्तैकशरणाः

(भा० टी०) [illegible]

[illegible]

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः॥

(भा० टी०) हम वृक्ष के बकले पहिर के संतुष्ट हैं तुम धनसे संतुष्ट हो जब हमारी तुम्हारी तुष्टी सम ठहरी तब संतोष निर्विशेष हुआ अर्थात् भेद न रहा दरिद्री वह होता है जिसे बड़ी तृष्णा है जब मन संतोष से पूर्ण हुआ फिर कौन दरिद्री और कौन धनवान् है ॥५०॥

यदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यमशनं।
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रत फलम्॥
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि।
विमृशान्न जाने कस्यैषापरिणतिरुदारस्य तपसः

(भा० टीका) स्वाधीन विचरना, बिना मांगे भोजन करना सहाय करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके संग रहना ऐसा शास्त्र कहना व सुनना कि जिसका उपशम रूपी व्रतही फल हो और यदि मन बाह्य पदार्थों में हो तो विचार करता हुआ मन्द मन्द गमन करे यह सब प्राप्त होना हम नहीं जानते कि किस प्राचीन और बड़े तपका फल है ॥ ५१ ॥

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशासुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी॥

येषां निःसंगताङ्गीकरण परिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्तें धन्याः संन्यस्त दैन्यव्यतिकरनिकरा कर्मनिर्मूलयन्ति

(भा० टी०) अपने आत्मा में संतोषवाले उन पुरुषों को धन्य है कि जिनका हाथही पात्र है और जो भ्रमण करके भिक्षा का अन्न खाते हैं और जिनका निर्मळ दिशारूपी दशावाला आकाश वस्त्र है और छोटीसी पृथ्वी शय्या है और जो परिणाममें असंग (अकेले) रहने को स्वीकार करते हैं और जिन्होंने दीनता के समूहको भली प्रकार छोड दिया है और जो कर्मकी जडको उखाड देते हैं ॥ ५२ ॥

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो ।
वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः ॥
जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं ।
सखे नान्यच्छ्रेयो जगतिविदुषोऽन्यत्र तपसः ॥

(भा० टी०) स्वामीकी सेवा करनी बडी कठिन है और राजा घोडे के समान चंचलचित्त होता है हम तो मोटी इच्छावाले हैं बडे पदमें हमारा मन बंधा (लगा) हुआ है और देहकी वृद्ध अवस्था है संपूर्ण जीने को मृत्यु हर लेती है इससे हे मित्र ! ज्ञानवान् को तपसे अन्य कल्याण कहीं नहीं है ॥ ५३ ॥

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला ।
आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपट लीलीना·म्बुवद्भङ्गुरम् ॥
लोला यौवन लालना तनुभृतामित्याकलय्यद्रुतं ।
योगेधैर्य समाधि सिद्धिसुलभे बुद्धिं विधद्ध्वं बुधाः ॥

भा० टी०—विस्तृत मेघमें चमकती हुई बिजुली के समान देहधारियोंका भोग चंचल है वायुसे छिन्न भिन्न मेघजलकी सदृश आयुष्य नाशवान् है यौवनका उमंग भी स्थिर नहीं है हे पण्डितो ! ऐसा समझकर धैर्य समाधि की सिद्धि से सुलभ जोग योग है तिसमें बुद्धि धारण करो ॥ ५४ ॥

पुण्ये ग्रामे वने वा महतिसितपटच्छन्नपाली कपाली।
मादाय न्यायगर्भद्विजमुखहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ॥
द्वारंद्वारमवृत्तोवरसुदरदरीपूरणायक्षुधार्तो ।
मानी प्राणी सधन्योन पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषुदीनः

(भा० टी०) पवित्र ग्राम अथवा पवित्र बड़े बनमें उज्ज्वल वस्त्र से ढका हुआ ठीकरा लेकर जिन की चौखट न्यायपूर्वक ब्राह्मणों की होमी हुई अग्नि के धूमसे मलीन हो उनके द्वारपर क्षुधासे पीड़ित पेटरूपी कन्दरा भरने को नित्य प्रति भ्रमण करता हुआ मानी पुरुष अच्छा है पर समान कुलवालों में दीन होना

चाण्डालःकिमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः
किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरःकोऽपि किम् ॥
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणाजने ।
नैकुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥

(भा० टीका) यह चंडाल है, वा ब्राह्मण, शूद्र, तपस्वी अथवा तत्वविवेक में चतुर बुद्धिमान् कोई योगीश्वर है ऐसे संदिग्ध अनेक प्रकार के वक्ताजनों के विकल्पों करके मार्ग में संभाषण करने पर भी योगी लोग राग द्वेष नहीं करते किन्तु स्वच्छन्द अपने मार्ग चले जाते हैं ॥ ५६ ॥

सखे धन्याःकेचित् त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा ।
वनान्तेचित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः ॥
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां ।
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥

(भा० टी०) हे मित्र ! उन पुरुषोंको धन्य है जो वन में बैठे हुए शरदऋतुकी चांदनी से श्वेत, आकाश के विस्तारसे सुन्दर और मनोहर रात्रिको इस प्रकार विताते हैं कि पुण्यका समूह जिनके मनमें शरण है और जिन्होंने भवबंधनके संबंध को तोडदिया है और जिनके मनमें से भयानक कठोर सर्परूपी विषय निकलगया है ॥५७॥

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थ गहनादायासकादाश्रया ।
च्छ्रेयोमार्ग मशेषदुःखशमन व्यापारदक्षं क्षणात् ॥
शान्तं भावमुपैहि संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं ।
मा भूयो भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना ॥

(भा० टी०) हे चित्त ! बडे परिश्रम से प्राप्त हुए और दुःखदाई आश्रय वाले इन्द्रियों के विषयरूपी वन से विश्राम ले सकल दुःखध्वंस करने के व्यापार में समर्थ कल्याण मार्गको शीघ्र प्राप्त हो, शांतभाव ग्रहण कर तरंगसी अपनी चंचलगती छोड दे इस नाशवान् संसारी इच्छा को फिर सेवन मत कर अब तू आपही प्रसन्नरूपहो ॥ ५८ ॥

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना ।
भूशय्यानववल्कलैरकरुणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥
क्षुद्राणाग विवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा ।
वित्तव्याधिविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥

(भा० टी०) अब हम वनमें जातेहैं हे बुद्धि हे प्रण-यिनी ! प्रीति करनेवाली, तू भी उठ और पवित्र फल मूलसे अब अपना पोषण कर; वनी बनाई भूमि शय्या और बने बनाये नवीन वल्कलके वस्त्रों से निर्वाह कर जिस वनमें अविवेक से जिनका मूढ मन है

सुद है और धनरूपी व्याधि जनित अविचारसे जिनकी बुद्धि विव्हल है उनका नामभी सुनाई नहीं देता है॥५६

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ ।
चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासङ्गमङ्गीकुरु ॥
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु चतडिल्लेखासु च श्रीषु च ।
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥

(भा० टी०) हे चित्त ! मोहको छोड जिनके शीश में अर्द्ध चंद्र विराजमान है उन शिवजी मे प्रीति कर और गंगातट के वृक्षों के नीचे विश्राम ले देखो तरंग, पानी के बुलबुले, बिजुली की चमक, स्त्री, अग्नि की ज्वाला की शिखा, सर्प, और नदीके प्रवाह में स्थिर रहने का क्या विश्वास अर्थात् इन सबके समान सातवीं लक्ष्मी चंचल है तिनके विश्वासमें मत भूल ॥ ६० ॥

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः ।
पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ॥
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं ।
नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥

(भा० टीका) सन्मुख प्रवीण गवैया गाने को उपस्थित हों दक्षिण देशके मान करनेवाले भाट गुणों को और पीछे चंवर डोलानेवाली सुंदर स्त्रियों के कंकणकी

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं
किंवा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये।
किं तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपांकुरच्छाय
चंचलमाकलय्य सकलं संतो वनांतंगताः ॥

(भा० टी०) संतजनों के निवास के लिये क्या ? हल न था और सुनने के योग्य क्या उत्तम २ गान न था और क्या अधिक प्रीति करनेवाला प्राणप्यारी स्त्री का सुख न था अर्थात् यह सब था तो भी संतजन इस जीवलोक (जगत) को हिलते हुये दीपक की छाया में भ्रमते मूर्ख पतंगके समान चंचल (मरण के उन्मुख) देखकर वन में चलेगये ॥ ६८ ॥

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरा वा ।
गिरिभ्यः । प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो
वल्कलिन्यश्च शाखाः ॥ वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रस-
भमपगतप्रश्रयाणां खलानां । दुःखात्तस्वल्पवित्त
स्मयपवनवशानर्तितभ्रूलतानि ॥ ६६ ॥

(भा० टीका) पहाड़ों की कंदराओं से कन्द मूल और पर्वतोंमें से पानी के झरने क्या नष्ट होगए वल्क ल वाले वृक्षों में से रस सहित फलवाली शाखा क्या ध्वस्त हो गई जो अनम्र खल जिन्होंने बडे कष्टसे कुछ

और पर्वतों के पगसे दबी हुई पृथ्वी भी नाश हो
है तब हाथी के बच्चों के कान के कोर के समान
चञ्चल मनुष्य के शरीर की क्या गणना है अर्थात् य
अवश्य नाश होगा ॥ ७१ ॥

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्ब
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः

(भा० टी०) अकेला इच्छा रहित और शान्त
हाथ ही का पात्र बनाये दिगंबर और कर्मों के न
करने में समर्थ हे शिव ऐसे हम कब होंगे ॥ ७२

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं ।
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥
सम्पादिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं ।
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥

(भा० टी०) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ७३ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(भा० टी०) जिन जगत के [illegible] तीनों के निकट त्रिभुवन के [illegible] पूजों के [illegible] और [illegible] जिह्वाओं से [illegible] के मत की निन्दा करो ॥ ७३ ॥

पातालमाविशसि यासि नभो विलङ्घ्य ।
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन ॥
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं ।
न ब्रह्म संस्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥

(भा० टी०) हे चित्त! तू अपनी चंचलता से पाताल में प्रवेश करता है आकाश उलंघकर ऊपर जाता है और सब दिशाओं में भ्रमण करता है पर भूलेभी कभी चित् अपने हृदय में स्थित निर्मलब्रह्म का नहीं स्मरण करता है कि जिसके स्मरणसे परमानन्दको प्राप्त हो ॥ ७४

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवो
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ।
व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरित्थंविधेनामुना ।
संसारेण कदर्थिता वयमहो मोहान्न लज्जामहे

(भा० टी०) वही रात और वही दिन नित्य होवे

(भा० टीका) हे जीव ! जिस परब्रह्म ज्ञानके आगे त्रैलोक्य का राज्य फीका होजाता है उसे प्राप्त होकर भोजन वस्त्र और मानके लिये मांगोंमें प्रीति मत कर वही एक भोग सबसे श्रेष्ट और नित्य उदित और प्रकाशित है जिसके स्वाद के सन्मुख त्रैलोक्य राज्य आदि सब ऐश्वर्य निरस होजाते हैं ॥ ८० ॥

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ॥
मुक्त्वैकं भवदुःखभाररचनाविध्वंसकालानलं ।
स्वात्मानन्दपदप्रवेश कलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥

(भा० टी०) श्रुति स्मृति पुराण और बडे विस्तार पूर्वक शास्त्रों के पढने से क्या फल है और स्वर्गरूपी ग्राममें कुटी बनाके रहनाही जिसका फल है ऐसे कर्मकांडकी कल्पनाके विभ्रमसे क्या है संसार बंधन के दुःख रचनाके विध्वंस करने के हेतु प्रलयाग्नि का सदृश ब्रह्मानन्द पदमें प्रवेशके उद्योग के बिना और सब शेष बनिज (वैश्यों का) व्यापार है ॥ ८१ ॥

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीरर्थाः संकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूगाः कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम्

दीखना था अर्थात् स्त्री में अत्यन्त आशक्त थे अब अत्यन्त कुशल विवेकरूपी अंजन लगाने से हमारी दृष्टि समान होगई है इससे वह दृष्टि तीनों भुवनों को भी ब्रह्मरूप समझती है ॥ ८४ ॥

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली ।
रम्यं साधुसमागमागतसुखं काव्येषु रम्याःकथाः
कोपोपाहितबाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं ।
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किंचित्पुनः

(भा० टी०) चन्द्रमा की किरणें भली लगती थीं हरिततृण वाली वनभूमि सुहावनी देख पड़ती थी मित्रों का समागम अच्छा लगता था शृंगाररसवाली कथा अत्यथा प्यारी जान पड़ती थी क्रोध के आंसुओं के बूंद से चंचल और मनभावन प्यारी का मुख सुन्दर लगता था पर जब संसार की अनित्यता चित्त में निश्चित हुई तब रमणीयता जाती रही ॥ ८५ ॥

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा ।
दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः
रथ्याकीर्णविशीर्णजीर्णवसनः संप्राप्तकन्थासनो ।
निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः

(भा० टी०) भिक्षा मांगके खाना लोगों के मध्य में संग रहना स्वाधीन चेष्टा करना देने और लेने से

निरव मार्गमें रत रहना मार्गमें पडे फटे पुराने वस्त्र के टुकडे की गुदडी ओढना मान और अहंकार से रहित होना दमतुख अर्थात् महानन्दही में इच्छा रखना इस प्रकार से कोई ही तपस्वी स्थिर रहता है ॥ ८६ ॥

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल ।
भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामन्त्यः प्रणामाञ्जलिः
युष्मत्संगवशोपजातसुकृतस्फारस्फुरन्निर्मल- ।
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परब्रह्मणि ॥

(भा० टी०) हेमाया पृथ्वी, हे पांचोंतत्त्वों के पिता वायु, हे सखा तेज हे बन्धु जळ, और भाई आकाश, तुम्हें हाथ जोड अन्त समय प्रणाम करता हूं तुम्हारे संग से पुण्य बना, पुण्य उदय होनेसे ज्ञान निर्मल हुआ और ज्ञान निर्मल होने से मोहमहिमा दूर हुई, अब हम पर ब्रह्म में लय होते हैं अर्थात् पृथ्वी आदि पंचतत्त्व रचित देह को महाज्ञान में सहायक समझ प्रणाम करते हैं क्योंकि फिर तुम से भेंट न होगी ॥ ८७ ॥

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो ।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् ।
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः [illegible]

(भा० टी०) जबतक शरीर अपना पुष्ट और निरोग है और वृद्धा अवस्था दूर है जबलों इन्द्रियों की शक्ति न्यून न हुई और आयुष्य भी क्षीण नहीं हुई है तबतक बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि अपने कल्याण का यत्न अच्छी भांति से करले जब घर जलने लगा तब कूप खोदने के उद्योग से क्या होता है ॥ ८८ ॥

नाभ्यस्ता प्रतिवादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये ।
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत्

(भा० टी०) महाजनों की प्रसन्नता के योग्य और वादियों के समूह को दमन करनेवाली विद्या का अभ्यास हमने न किया और तलवार की धारों से हाथियों के मस्तक का कुम्भस्थल काटके स्वर्गों में अपना यश न पहुंचाया और चांदनी रात में सुन्दर स्त्री के कोमल अधर पल्लव का अमृत पान न किया तो हम पुरुषार्थ हमारी युवा अवस्था ऐसी बीती जैसे सूने मंदिर में दीपक जल कर आपही ठंढा होजाता है ॥ ८९ ॥

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं ।
केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ॥

स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये ।
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥

(भा० टीका) सत्पुरुष को ज्ञान मान मद आदि नष्ट करने के हेतु हैं और वही ज्ञान दुर्जनों को मद मान उत्पन्न करता है जैसे एकांतस्थान संयमी पुरुषों को मुक्ति साधन का हेतु होता है और कामातुरों को [illegible] नायन का कारण होता है ॥ ६० ॥

जीर्णा एव मनोरथाश्च हृदये यातं च तद्यौवनं ।
हन्तांगेषु गुणाश्च वंध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥
किं युक्तं सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतांतोऽक्षमी
हा ज्ञातं मदनांतकांघ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्या गतिः ।

भा० टी०—सब मनोरथ हृदयही में जीर्ण होगये कोई भी सिद्ध न हुये युवा अवस्था भी व्यतीत हुई और गुणग्राहकों के बिना सब गुण निष्फल होगये अब [illegible] नाशक बलवान् काल सहसा कर निकट चला आता है इससे अब यह जाना कि कामनाशक शिवजी के दोनों चरण छोड़ और कोई [illegible] गति नहीं ॥ ६१ ॥

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं शीतमधुरं ।
क्षुधार्तः शाल्यन्नं कवलयति [illegible] ॥
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढमालिंगति वधूं ।
प्रतीकारं [illegible] [illegible]

(भा० टी०) जब मनुष्यों का कंठ प्यास से सूख
लगता है तब शीतल सुगंधित जल पीता है जब क्षु
से पीडित होता है तो शाक आदि सामग्री के साथ
वलों के भोजन करता है जब कामदेव की अग्नि प्रच
होती है तब सुन्दर स्त्री को हृदयसे लगाता है विच
तो यह एक २ व्याधि की औषधि है परन्तु मनुष्यों ने
इसे उलटा सुख ही समझ लिया है ॥ ९२ ॥

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो त्वां
ध्येये ध्यानं निवेश्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले ॥
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे
दुःखं मोक्ष्ये कदाहं समकरचरणे पुंसि सेवासमुत्थम् ॥

(भा० टी०) हे स्वामी कामदेव के शत्रु शिव ! मैं
गंगाजलसे स्नानकर सुन्दर पवित्र फूलफलोंसे तुझे पूज
पर्वत की कन्दरा में पत्थर की चट्टान की शय्या पर बैठ
ध्यान योग्य तुम्हारी मूर्तिमें ध्यानावस्थित हो गुरु के वचन
मान आत्माराम और फलाहारी होके तुम्हारी कृपा से
कब मैं मकररेखा से युक्त चरणवाले अर्थात् महाभाग्यवाले
पुरुष (राजा) की सेवासे उत्पन्न हुए दुःखसे छूटूंगा ॥ ९३ ॥

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं
सारंगाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां

उद्यानेषु विचित्रभोजन विधिस्तीव्रातितीव्रं तपः ।
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम् ॥
आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते ।
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते ॥

(भा० टी०) उपवनों में नानाप्रकार के भोजन व नाय के खाना और जहां कठिन सेकठिन तप और लं गोटी पहिननाही परम सुन्दर वस्त्र और भीख मांगना ही जहां भूषण है और मृत्यु आना ही जहां परममङ्गल उत्पन्न होता है ऐसी काशी को छोड पंडित लोग अन्यत्र क्यों बसते हैं ॥ ६६ ॥

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि ।
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ॥
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु ।
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीम शर्मप्रदम् ॥

(भा० टी०) अभी समय नहीं महाराज एकान्त में बैठे कुछ विचार कर रहे हैं अभी सोते हैं ख्ये ही पासे टठो तुम्हें बैठे देखेंगे तो प्रभू हमपर क्रोध करेंगे ऐसे वचन जिनके द्वार द्वारपाल बोलते हैं उन्हें त्यागकर हे चित्त ! विश्वेश्वर की शरण में जा जिसके द्वारपर कोई रोकने वाला नहीं वहां निर्दय और कठोर वाक्य नहीं सुनने में आते और जो अनंत सुखदाई है ॥ ६७ ॥

रे कंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारवै ।
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि ॥
मुग्धे स्निग्धविदग्धचारुमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं ।
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥

(भा० टी०) रे कामदेव ! धनुषकी टंकारके शब्दों से तू हाथको क्यों उठाता है रे कोकिल ! तू वृथा क्यों बोलती है तेरे पंचमस्वर से कुछ न होगा और हे मुग्धे (मूर्ख) स्त्री तेरे स्नेहयुक्त और मधुर कटाक्षों से भी कुछ न होगा अर्थात् तुम सब मेरे ऊपर प्रहार नहीं कर सकते क्यों कि अब हमारे चित्तने शिवजी के चरणारविंद को चूमकर अमृत का पान कर लिया है ॥ १०० ॥

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी ।
निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने ॥
मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्तातिशून्यालये ।
ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥

(भा० टी०) ऐसा योगी सुख से रहता है जिसके सौ खंड की फटी कौपीन है और कंथा भी वैसीही जर्जर है और निश्चिन्त सुख साध्य भिक्षा है और श्मशान में तथा वनमें जिसकी शय्या है और शत्रु

त्र में समानता है और शून्यालय अत्यन्त निर्मल
ल लक्षण चिन्ता है ॥ १०१ ॥

गाभंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-।
त्कस्येव कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः ॥
शापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां ।
मोच्छित्तिवशेस्वधामनियदिश्रद्धेयमस्मद्वच ॥

भा० टी०—जितने भोग हैं उनकी वृत्ति नाशवान्
है उनके संसर्गसे भव है अर्थात् वारम्वार जन्म मरण
है यह जानकरभी हे लोगो ! किसलिये भोगरूपी चक्रोंमें
घूमतेहो ऐसी चेष्टासे क्या फल मिलना है यदि हमारे
वचनका विश्वास मानों तो कामनाशक शिव स्वयं
प्रकाश रूप हैं उनमें जो आशापाश छेदनकर शुद्ध हो
रहा है ऐसा चित्त निरन्तर लगावो ॥ १०२ ॥

न्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता।
नन्दा भुजलं पिबन्ति शकुना निःशंकमङ्केशयः ॥
मपाकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट ।
क्रीडाकाननकेलि कौतुक मुपामायुः परि क्षीयते ॥

(भा० टीका) जो उत्तम पुरुष पर्वत की कन्दरामें
रहते और परब्रह्मकी ज्योती का ध्यान करते हैं जिनके
आनन्दका आंसू पक्षी लोग निडर हो गोदमें बैठकर

पीते है उनको धन्य है और हम लोगों को तो अ
केवल मनोरथही के मंदिर की बावडी के तटमें जो
का वन जिसमें लीला के कौतुक करते ही क्षीण होगी
तात्पर्य यह है कि नाना प्रकारकी मिथ्या कल्पना
में जन्म व्यतीत होता है वास्तवमें कोई मनोरथ
नहीं होता ॥ १०३ ॥

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं ।
संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः ॥
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै ।
रस्थैर्येण विभूतिरप्युपहता ग्रस्तं न किं केन वा ॥

(भा० टीका) मृत्युने जन्म को बुढापेने युवावस्था
को, धन की इच्छाने संतोष को सुन्दरस्त्रियों के हावभाव
शान्तिसुख को, मत्सरी (जो पराई बडाई न सहै) लोगों ने
गुण को सर्पोंने वन भूमि को, दुर्जनोंने राजा को और चंचल
[illegible] ने [illegible], यो ही इस संसारमें किसने किसको नहीं
[illegible] है ॥१०४॥

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते ।
[illegible] पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः ॥
जातं जातमवश्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात् ।
तत्किं तेन निरङ्कुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थिरम् ॥

(भा० टी०) सैंकड़ों मानसिक दैहिक रोग व्याधि मनुष्यों की आरोग्यता को मूल से उखाड़ डाला है जहां द्रव्य बहुत होता है वहां विपत्ति द्वार तोडके आ जाती है जो जो जन्मता है उसे मृत्यु बलात्कार से वश में अवश्य कर लेती है ऐसी कौन वस्तु है कि जिसे निरंकुश विधाता ने स्थिर बनाई है ॥ १०५ ॥

क्लेशाणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भमध्ये।
कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमो यौवने चोपभोगः॥
नारीणामवज्ञाविहसितवसति वृद्धभावोऽप्यसाधुः।
संसारेरे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित्॥

(भा० टी०) अपवित्र मलमूत्र के स्थान में बड़े कष्ट से हाथ पैर बंधे हुए बल्याअवस्था में गर्भ बन्दीगृह में रहता है फिर युवाअवस्था में स्त्रियों के वियोग दुःख से पीड़ित रहता है और वृद्धावस्था में नारियों से निरादर पाकर नीच। फिर किसी शोच में पड़ा रहता है तो हे मनुष्यो ! इस संसार में किञ्चित्मात्र भी सुख होय तो कहो। अर्थात् सुख का लेश भी नहीं है ॥ १०६ ॥

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं।
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः॥
शेषं व्याधिवियोग दुःख सहितं सेवादिभिर्नीयते।
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥

इनसे भी हम परित्याग नहीं करसक्ते अर्थात् इनकी आ
शा भी हमसे त्याग नहीं होता ॥ १०८ ॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती ।
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ॥
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो ।
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥

(भा. टी.) वृद्धावस्था वाघिनीसी सन्मुख खडी है
सब रोग शत्रुओंके समान देहपर दण्ड प्रहार कररहे हैं,
और प्रतिदिन इसप्रकार निकलती जातीहै जैसे फूटे घडेमे
से पानी निकलता जाय,तिसपर भी लोग जिसमें अपना बुरा
हो वही काम करते जाते हैं यह बडा आश्चर्य है ॥१०९॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं ।
पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ॥
तदपितत्क्षण भंगि करोति ।
चेदहह कष्टम पंडितताविधेः ॥

(भा० टीका) बडे खेद की बात है कि ब्रह्मा की
भी यह मूर्खता कि गुणोंकी खान और संपूर्ण पृथ्वी के
भूषण रत्नरूप पुरुषको पैदा करता है और फिर उसको
क्षणभंगुर करदेता है—उसको तो सदैव स्थिर बनाता
तो उसकी पंडिताई थी ॥ ११० ॥

अभिमतमहामानग्रन्थिप्रभेदपटीयसी ।
गुरुतरगुणग्रामांभोजस्फुटोज्ज्वलचंद्रिका ॥
विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका ।
जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनाम् ॥

(भा० टीका) अभिमत महाभिमान के नाश करने में समर्थ, श्रेष्ठ गांभीर्यादि गुणगणरूप कमलों के संकुचित करने में उज्ज्वल पूर्णिमा की चांदनी, विपुल प्रकाशमान लज्जारूप लतासमूह के नाश करने में कुठारिका ऐसी यह दुष्पूर जठरपिठरी ही सब विडंबना करती है ॥ ११३ ॥

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां ।
पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम् ॥
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलतापल्लवमयी ।
सहंते संतापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः ॥

(भा० टी०) वन वन में बिना खेद ही स्वच्छंदता से वृक्षों के फल लभ्य हैं, स्थान स्थान में पवित्र नदियों का शीतल मधुर जल है, तथा जगह जगह में अतिकोमल लताओं के पल्लवों की मृदुस्पर्शवाली शय्या है तोभी कृपण जन धनियों के द्वार में संताप को सहन करते ही हैं ॥ ११४ ॥

ं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः ।
य्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं ।
ते यस्य कुटुंबिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ॥

(भा० टीका) हे सखे ! तूही बता कि धैर्य जिस का पिता है, क्षमा जिसकी जननी है, शांति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहन मनोनिग्रह जिसका भाई है, भूमि जिसकी शय्या दशों दिशा जिसका वस्त्र है और ज्ञानामृत जिसका न है ऐसा जिसका कुटुंब है उस योगी को कि- भय है ॥ ११७ ॥

धिंतय मा रमां सहृदिनामस्थायिनीमास्थया ।
भ्रूलताकुटीकुटीविहरणव्यापारपण्यांगनाम् ॥
यात्कुरितः प्रविश्य भवनद्वाराणि वाराणसी- ।
थ्यापंक्तिषु पाणिपात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे ॥

(भा. टी.) हे मन ! राजाओं की भृकुटीरूप कुटी में विहार करनेवाली मानो पण्यांगना हो ऐसी इस चंचल लक्ष्मी की आकांक्षा तू आदर पूर्वक कभी मत कर, क्योंकि अब हम कंथारूप कंथुरी को पहिन के काशी नगरी की गलियों में घूमते २ वहां के घरद्वारों में प्रवेश कर वहां हस्तरूप पात्र के लिये भिक्षा की ही इच्छा करते हैं ॥ ११८ ॥

सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः ॥
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं ।
एते यस्य कुटुंबिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ॥

(भा० टीका) हे सखे! तूही बता कि धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी जननी है, शांति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहन है, मनोनिग्रह जिसका भाई है, भूमि जिसकी शय्या है, दशों दिशा जिसके वस्त्र हैं और ज्ञानामृत जिसका भोजन है ऐसा जिसका कुटुंब है उस योगी को किसका भय है ॥ ११७ ॥

अधितय मा रमां सकृदिनामरपायिनीमस्थिरां ।
शालभकुटीकुटीविहरणव्यापारपण्यांगनाम् ॥
श्राकंठुरितः प्रविश्य भवनद्वाराणि वाराणसी- ।
रथ्यापंक्तिषु पाणिपात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे ॥

(भा. टी.) हे मन! राजाओं की भृकुटीरूप कुटी में विहार करनेवाली मानो पण्यांगना है ऐसी इस चंचल लक्ष्मी की आकांक्षा तू आदर पूर्वक कभी मत कर, क्योंकि अब हम कौपीनरूप कंथाओं को पहिन के काशी नगरी की गलियों में घूमने २ वहां के द्वारों में प्रवेश कर वहां हस्तरूप पात्र में गिरी भिक्षा की ही इच्छा करते हैं ॥ ११८ ॥